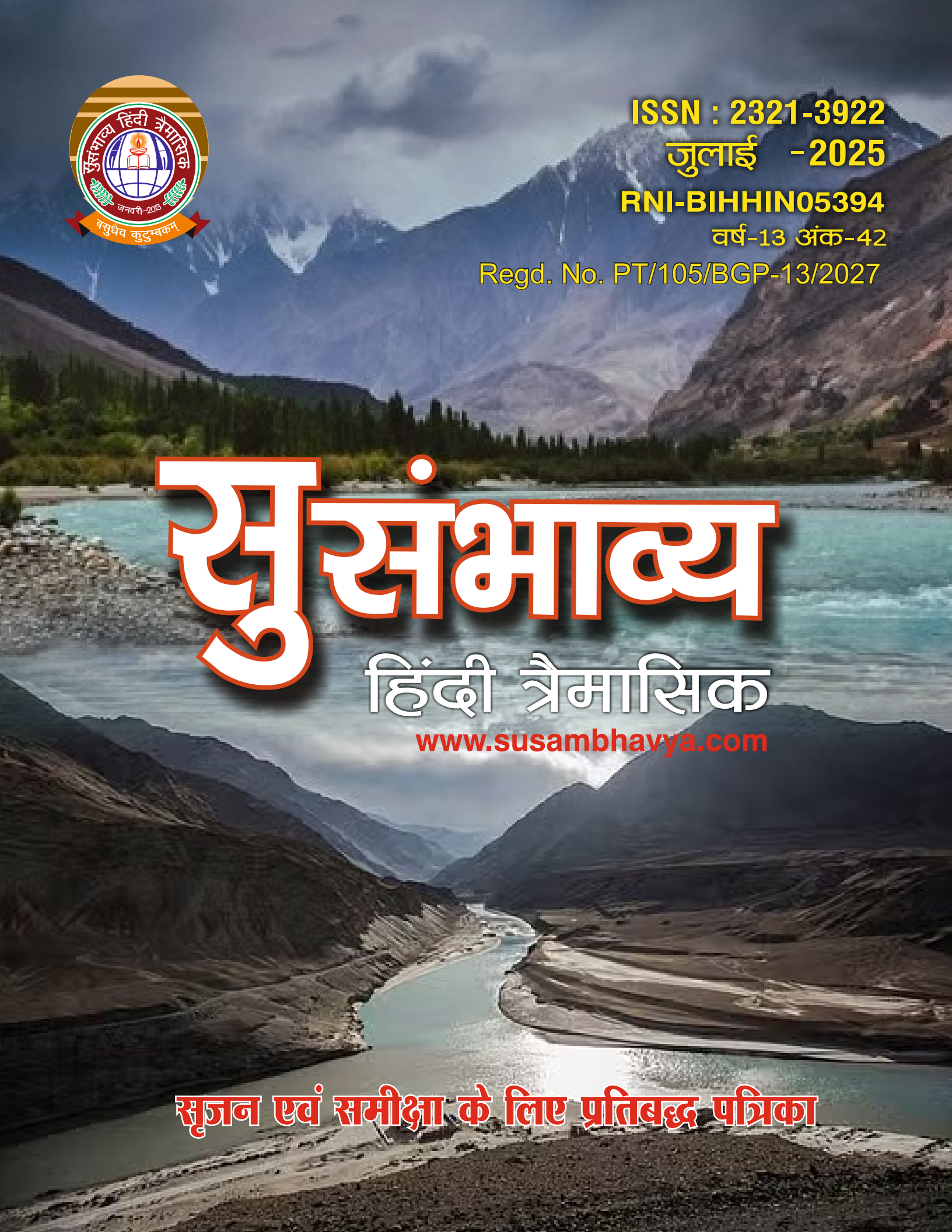

ISSN : 2321-3922
जुलाई -2025
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-13 अंक-42
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–13 अंक 42

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–सितम्बर 2025
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जुलाई–सितम्बर 2025

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर2025 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
2	समीक्षा	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार	डॉ0 कुंदनलाल उप्रेती	06
3	समीक्षा	सुमित्रानंदन पंत की बालसाहित्य सर्जना	गौरी शंकर वैश्य	08
4	समीक्षा	डॉ. रमेश राजहंस और उनकी कविता	हृदयेश मयंक	11
5	समीक्ष	मानवीय सरोकारों की कविता करते हैं कुलदीप शर्मा	के.आर. भारती, आई.ए.एस.	13
6	समीक्षा	सुनो गंडक की आत्मिक और आत्मीय प्रेम कविताएँ	विजय कुमार तिवारी,	16
7	समीक्षा	फूलों के आलते में रेत की दीवार : संवेदनाओं और संघर्ष का सुंदर समन्वय	रीतेश भारद्वाज	19
8	समीक्षा	युगीन सच्चाइयों को व्यक्त करती कहानियाँ	ज्योति जैन	21
9	आलेख	नवगीत ने गीतकाव्य की अस्मिता की रक्षा की	डा. राधेश्याम बन्धु	23
10	आलेख	रचना में सत्य का प्रसारण	डॉ. अमर सिंह बधान	27
11	आलेख	ब्रज में देखी होली	डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'	30
12	आलेख	लघुपत्रिका का आंदोलन	दयानन्द जायसवाल	32
13	आलेख	पुनर्जन्म का सच क्या अधूरी कामना है	संजय वर्मा 'दृष्टि'	34
14	लघुकथा	आधुनिक संध्या	कशिश कुमावत	35
15	संस्मरण	उथल–पुथल	अशोक गुजराती	38
16	जीवनी	आधुनिक रायगढ़ के शिल्पी दानवीर सेठ किरोड़ीमल	बसन्त राघव	39
17	व्यंग्य	निमंत्रण–पत्र न बुलाने का	सीताराम गुप्ता	42
18	रपोर्ताज	हरफनमौला 'कैफी' की कैफियत	कृष्ण कुमार यादव	43
19	लघुकथा	बाल कहानी क्रोध का परिणाम	प्रिया देवांगन 'प्रियू'	37
20	कहानी	मन के तहखाने से	नरेंद्र किशोर सिन्हा	46
21	कहानी	अंतिम इच्छा	शुभदा मिश्रा	48
22	कविता	अधूरा साया	डॉ. ज्ञानी चोर	26
23	ग़ज़लें	अधूरा साया	डॉ. नवीन माथुर पांचोली	26
24	कविता	नगर की नसों में बहता हूँ	मिथिलेश आदित्य	41
25	कविता	इस कठ–करेज़ समय में वसंत	सुभाषचन्द्र झा	36
26	कविता	कमजोर तू नहीं, तेरा वक़्त है	अवधेश माहेश्वरी	29
27	कविताएं	छू लो, सुख	ज्योति सिन्हा	29
28	कविता	अपराजिता हूँ	डॉ. आशा सिंह	22
29	कविता	घर पर सब कैसे हैं	महेश कुमार केशरी	31
30	कविताएं	तुम रूठा न करो, सब छलावा है, गोरैया	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	52

लौटे यात्री का वक्तव्य

सभी जगह
जो उपजाता है अन्न, पालता सबको,

उसकी झुकी कमर है।
सभी जगह

जो शस्ता है, जो बागडोर थामे है, उस की पीठ मंद है
आँखों पर है चढ़ा हुआ मोटा चश्मा जो

प्रायः धूमिल भी होता है।
सभी जगह

जिसकी मुट्ठी में ताकत है
उसका भेजा है एक और भेड़िए,

दूसरी पर मर्कट का।
सभी जगह

जो रंग–बिरंगी जाजम पर फैलाकर सपनों की मनियारी
घात लगाते हैं ग्राहक की,

दिल मुर्गी का रखते हैं।
सभी जगह

जो मूल्यवान है सकुचा रहता है, अवश्य, सीपी के मोती–सा,
जो मिलता नहीं बिना सागर में डूबे

सभी जगह
जो छिछला है, ओछा है,

नकली कीमखाब पर सजा हुआ बैठा है लकदक,
चौंधाता आँखों को, जब तक ठोकर लगे, पैर रपटे

या जेब कटे, नीयत बिगड़े, हो मतिभ्रंश, दिल डँसा जाए!
सभी जगह

है एक प्रश्न एक
क्या दोगे? कितना दे सकते हो?

यही पूछते हैं जो फिर भेदक आँखों से
लेते हैं टटोल अंटी में क्या है

यही दूसरे पूछ, नाप लेते हैं कितना
लहू देह में बाकी होगा

यही तीसरे, आँक रहे जो
मांस–पेशियों में कितना है श्रम–बल

(बिना छुए या टोए जैसे चूजे को गाहक टोता है।)
यही और, जो तिनकों को सिखलाते

बँधी हुई गड्डी की ताकत, किंतु बाँधने वाला तार
सदा अपनी मुट्ठी में रखते हैं

यही और, जिनकी लोलुपता
देने का आमंत्रण सबको देती है,

क्योंकि सिवा इस दिन के बस उनको लेना ही लेना है।
और यही वे भी, जिनकी जिज्ञासा—

कभी नहीं होती रूपायित, मुखरित
जो अनासक्त हैं, जिन्हें स्वयं कुछ नहीं किसी से लेना है

क्या दोगे? कितना दोगे—दे सकते हो—
मुझे नहीं, जग भर को, जीवन–भर को,

प्यार?

अज्ञेय

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य मानव–जीवन और उसके अनुभवों का प्रतिबिम्ब होता है और मानवीय मूल्य साहित्य में व्यक्त होते हैं, जो पाठक को विभिन्न दृष्टिकोणों और भावनाओं को समझने में मदद करते हैं साहित्य का स्रष्टा मानव है और मानव–जीवन का अंकन ही साहित्य का उद्देश्य है। साहित्य का प्रतिपाद्य विषय जीवन मूल्य है जिसमें मानवीय मूल्यों का विशेष महत्त्व है। दर्शन, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की भित्ति पर आश्रित होकर ही साहित्य जीवन की व्याख्या करता है। प्रत्येक साहित्यकार का एक जीवन दर्शन रहता है और वह अपने दर्शन के अनुकूल ही साहित्य में जीवन मूल्यों की व्याख्या करता है। प्रत्येक साहित्यकार का एक जीवन दर्शन रहता है और वह अपने दर्शन के अनुकूल ही साहित्य में जीवन मूल्यों का चित्रण करता है। बिना जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों के साहित्य मनोविलास मात्र है। साहित्यकार अपने समय और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। परिस्थितियों के अनुरूप वह एक जीवन दृष्टि का निर्माण करता है और उसे साहित्य में अभिव्यक्त करता है।

आज साहित्य में अस्तित्व–संकट खड़ा हो गया है। मानव मूल्यों से कटकर आज एकाकीपन से घिर हुआ अपने परिवेश और परिवार से भी कटता जा रहा है। रिश्ते सब खंडित हो चुके हैं। अनिश्चित और संक्रमण की स्थिति से आज मानव गुजर रहा है। मूल्यों के साथ मानव की संपृक्ति नहीं है। आज मानव अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने में अपने को असमर्थ पाता है। इक्कीसवीं शताब्दी का साहित्यकार अपनी व्यापक और विशाल संभावनाओं तथा बड़ी जटिल सीमाओं के बीच द्वन्द्वात्मक स्थिति में आ गया है। संभावनाओं और सीमाओं की चेतना उसे अस्तित्ववादी प्रवृत्ति ही प्रदान करती है। उसे निजी मूल्यों के स्वीकारने पर बल देती है; क्योंकि वह व्यक्तिवादी मूल्यों का पक्षधर हो गया है। ज्ञात हो कि इसी मध्यकाल में हिन्दी साहित्य में कबीर, तुलसी, सूरदास जैसे महान साहित्यकार उत्पन्न हुए, जिनकी रचनाएँ शाश्वत मानव मूल्यों का आकाशदीप हैं। तुलसीदासजी ने अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में समस्त सम और विषम विचाराधाराओं का अद्‌भुत परिचय दिया है। तुलसी के समय का समाज नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से ह्रासोन्मुख था। उन्होंने सामाजिक जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया है।

रामचरितमानस में एक पुत्र का आदर्श, एक राजा का आदर्श, एक पति का आदर्श, एक पत्नी का आदर्श, माँ का आदर्श, एक सेवक का आदर्श आदि को प्रस्तुत किया गया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि कोई भी समाज अथवा राष्ट्र आचार के बल पर ही समृद्ध हो सकता है। संत कवियों ने भी अपने साहित्य में हृदय की पवित्रता, आचरण की पवित्रता और वासनाओं से मुक्ति का उपदेश दिया है। उनका उद्देश्य कविता करना नहीं होकर समाज–सुधार में निहित था। कबीर ने गिरते हुए मानव मूल्यों को बचाने का और मानव मूल्यों से लोगों को परिचित कराने का तथा सामाजिक समरसता लाने का प्रयास किया। इनके साहित्य में नैतिकता, सदाचार, परोपकार, क्षमा, सत्य, संतोष आदि मूल्य जो श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यक है, वे मूल्य उनके साहित्य में मिलते हैं। आधुनिककाल के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', दिनकर, मुंशी प्रेमचंद आदि साहित्यकारों के साहित्य आज के युग की थाती है, क्यों? कारण उसमें जीवन के प्रति, मानव मूल्यों के प्रति गहरा मोह है, उसी सुखी और समृद्ध बनाने का संकेत है।

आज साहित्य को नवीन सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता है, जिसमें सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक मान्यताओं की अनुभूति हो सके और जो साहित्य की बारीकियों को समझ सके तथा अपनी धरती और अपने वातावरण से संबंध रख सके। हमें रचनाओं को और अधिक संवेदनशील और रसात्मक बनाना है। संतुलित और समन्वयवादी दृष्टि से गंभीर तात्त्विक चिंतन के धरातल पर साहित्यकारों को उसके तत्त्व तलाशने की आज आवश्यकता है। विचार और चिंतन के नये द्वार मानसिक स्तर पर खोलने की भी आवश्यकता है। अपनी लोक कल्याणकारी विचारधारा के कारण ही तुलसी, कबीर, भूषण, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला आदि हमारे हृदयों में स्थायी घर कर चुके हैं।

संवेदन की संपूर्णता के वास्ते ही लेखक से उम्मीद की जाती है कि वह वस्तु से संपृक्ति के क्षणों में उससे अपनी दूरी भी बनाये, ताकि विषयीगतता का सम्मोहन उस पर न आ जाए और रचना एक निर्भ्रान्त रूपाकार में संपूर्ण उभरे। पर क्या हो रहा है? अधिकतर रचनाकार सामाजिक या मानवीय वस्तु तो उठा लेते हैं, पर संपृक्ति के लिए उन अवसरों की तलाश में रहते हैं, जिनमें वह डूब जाय और उसका पाठक भी। इस वैचारिक सत्ता ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मानवीय विषय वस्तु की संवेदना को संकुचित कर दी है; क्योंकि संवेदना ही साहित्य का केन्द्र है, वही साहित्य की अपनी पहचान है। हालाँकि आधुनिकता और नवीनता के अन्वेषण में हिन्दी की नई पीढ़ी ने जहाँ अपना एक प्रशस्त मार्ग बना लिया है, वहाँ उसके समक्ष जटिलताएँ भी उपस्थित हो गयी हैं, पर साहित्य आगे बढ़ रहा है। इसमें भी कोई किसी को आपत्ति नहीं है। साहित्य की समग्र चेतना का प्रतिनिधित्व हमारा नवलेखन कर रहा है और उसमें जागरण के साथ नये युग के प्रतिध्वनि की गूँज भी आ गयी है, यह अभिनंदनीय है। यह आशा सहज ही बँधती है कि अनेकानेक उपलब्धियों के बाद भी हमारी उपलब्धियाँ इतनी हैं जो नवलेखन को नये युग की समन्वय–भावभूमि की पीठिका के रूप में स्वीकृत कर सकती हैं। सादर...

समोक्षा

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

डॉ0 कुंदनलाल उप्रेती
न्यू आदर्शनगर, पलारोड अलीगढ़
9837461106, 20 202001

शिक्षा के क्षेत्र में आत्मदान की दिशाएँ अधिक हो जाती हैं तथा सृजन के सौन्दर्य और आनन्द की समृद्धि होती है। शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार के द्वारा सांस्कृतिक संतुलन की सफल चेतना जागरित करना एक कठिन तपश्चर्या है; क्योंकि समस्त भोगों की संवेदना और अनुभूति का केन्द्र मानव का अहंकार है, इससे मुक्ति परमावश्यक है। इसीलिए कहा गया है कि 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' अर्थात् क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति कौन–सा पाप कर्म नहीं कर सकता। अतएव शिक्षा और शिक्षा–जगत् में शिक्षाशास्त्री, शिक्षक एवं अन्य संबंधित अधिकारी–कर्मचारी को कर्मयोगी बनना पड़ेगा, अपने अहंकार से मुक्त होना पड़ेगा, तभी सही मायने में शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार को ठोस धरातल की प्राप्ति होगी और शिक्षा का क्षेत्र अभिवृद्धि और समृद्धि से समन्वित होगा, सम्पन्न होगा।

वस्तुतः लेखक की रचनाधर्मिता की महत्ता प्रदान की उदारता में निहित है। शिक्षादर्शन में उपादान इस प्रदान के विषय बनते हैं। यही दार्शनिकता का प्रदान सांस्कृतिक आत्मदान का आधार सूत्र बनता है। यही कारण है कि सांस्कृतिक आत्मदान का वृक्ष सभ्यता की भावभूमि पर सामाजिक चेतना के जागरण का हेतु बनता है। सामाजिक मंगल की समृद्धि वास्तव में लोक कल्याणी सिद्ध होती है। सम्प्रति वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप आत्मदान के सांस्कृतिक भावों का आधार ही महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है, जिसके लिए जनमानस के साथ–साथ शिक्षाशास्त्रियों के समन्वयात्मक चिंतन की महती आवश्यकता है। अद्यतन परिवेश में आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्त व्याख्याएँ धीरे–धीरे आउट–डेटेड होती जा रही हैं। यही कारण है कि केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ई. में इस बात की ओर भी संकेत किया है।

आज की स्थिति और विषम परिस्थिति में शिक्षा, दर्शन, कला, संस्कृति आदि के क्षेत्र में संख्य और सहयोग का भाव ही समन्वयात्मक रूप से सांस्कृतिक आत्मदान के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। हमें सम्प्रति सम्भावनाएँ तलाशनी होंगी। उन सम्भावनाओं को सत्य और सार्थक बनाने के लिए हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक आधार के द्वारा जगानी होगी। मर्यादित और संतुलित आत्मभाव की सांस्कृतिक चेतना जागरित करनी होगी। यही शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक आधार के विकास का मार्ग होगा तथा भविष्य में व्यक्ति के आनन्द और समाज के मंगल का विधान भी सिद्ध होगा। स्मरण रहे कि उस नूतन आत्मदान का आधार वह स्वतंत्र और समतापूर्ण आत्मभाव ही होगा, जिसे पूर्व में अध्यात्मवाद दर्शन का चरम तत्त्व माना जाता रहा है। उसी तात्त्विक विवेचन और समता के आत्मभाव में ही सच्ची जनतांत्रिक प्रणाली का आनन्दमय साम्राज्य स्थापित होगा। इस प्रकार आत्मवाद की समृद्धि में शिक्षा और शिक्षा दर्शन के असीमित सौंदर्य और श्रेयमयी संस्कृति भी विकसित होगी। इसीलिए शिक्षा दर्शन में भी शिवम् का स्वरूप सृजनात्मक माना गया है।

लगभग चार दर्शकों में साहित्य और शिक्षाशास्त्र के विविध पक्षों, विषयों एवं सिद्धान्तों से संबंधित जो लब्धप्रतिष्ठ लेखकों एवं शिक्षाशास्त्रियों के महनीय ग्रंथों से समय–समय पर संगृहीत और विवेचित कर लिखता और पढ़ता आ रहा है, उनमें से अधिकांश को उन्हें मैं अपनी सैंतीस प्रकाशित कृतियों के माध्यम से साहित्य और शिक्षाशास्त्र के जिज्ञासु विज्ञजनों तथा मर्मज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार' से मेरा अभिप्राय शिक्षा विषयक उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों और तत्त्वों से हैं, जिनमें भारतीय शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करनेवाले प्रमुख घटक कारक के रूप में रेखांकित किए गए हैं। प्रस्तुत कृति आठ प्रमुख खण्डों में विभक्त है।

खण्ड एक में शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा, शिक्षा की प्रकृति, शिक्षा के कार्य, शिक्षा की आवश्यकता एवं शिक्षा का महत्त्व आदि बिन्दुओं पर तात्त्विक विवेचन गवेषणात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि स्पष्ट है इस विवेचन–विश्लेषण में शिक्षा विषयक सिद्धान्तों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण उजागर किया गया है।

खण्ड दो के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं, जिसमें शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का आधार, शिक्षा के व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्य, शिक्षा के कार्य, राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्यों का विवरणात्मक शैली में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विषयों के प्रतिपादन एवं विवेचन में यह प्रयास रहा है कि विद्वान् शिक्षाशास्त्रियों के मंतव्य अपने मौलिक और अक्षुण्ण रूप में निर्दिष्ट किए जाएँ और उन पर तर्क–वितर्क, खण्डन–मण्डन भी प्रायः उसी रूप में प्रस्तुत किए जाएँ, जो कि मूल लेखकों को अभीष्ट रहे हैं। अनेक स्थलों पर विभिन्न शिक्षा विषयक प्रश्नों एवं शंकाओं को उठाकर उनका समाधान भी दार्शनिक शब्दावली में किया गया है।

तृतीय खण्ड शिक्षा के साधन विषयक विवेचन का द्योतन करता है। इसमें औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, सक्रिय एवं निष्क्रिय शिक्षा, व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक साधन– दोनों साधनों में अंतर, साधन के रूप में विद्यालय की भूमिका, घर–परिवार की भूमिका, राज्य की भूमिका, जनसंचार की भूमिका, समुदाय की भूमिका आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें दर्शन और सृजन का विभाजन नहीं प्रस्तुत किया गया है, बल्कि उसे समन्वय के धरातल पर अधिष्ठित करने का प्रयास रहा है।

खण्ड चार में शिक्षा के दार्शनिक आधार को वर्ण्य विषय बनाया गया है। यह प्रदर्शन भी दर्शन का ही अनुशीलन है। दर्शन का पाठक विवेचन–विश्लेषण को केवल एक अनुभावन की वस्तु मानता है, वह किसी अधिकार का अनुभव नहीं करता। इसमें भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय–दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय–वैशेषिक की तत्त्व विवेचना, वेदान्त दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, चार्वाक दर्शन, शैव दर्शन एवं प्रत्याभिज्ञा दर्शन का संक्षिप्त; परन्तु सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उसमें यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है कि दर्शन

जीवन की महनीयता एवं अपेक्षित आदर्शों का आयोजन करता है तथा शिक्षा इस आयोजन की पूर्ति का साधन बनती है। दर्शन जीवन–लक्ष्यों को निर्धारित करता है तथा विकास की चरम सीमा को भिन्न–भिन्न दृष्टियों से निरखता–परखता है। दर्शन की सहायता से ही शिक्षा का उद्देश्य पूर्णरूपेण स्पष्ट होता है। इस तथ्य को केन्द्र में रखकर सम्पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

खण्ड पाँच में शिक्षा और दर्शन का संबंध दर्शाया गया है, जिसमें दोनों को एक दूसरे पर आश्रित दिखाया गया है। दोनों का लक्ष्य जीवन को विकसित करना है। एडम्स के कथन की पुष्टि भी की गई है, जिसमें कहा गया है कि शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलू है। इस खण्ड में दर्शन का अर्थ, व्यापक और विशिष्ट, दर्शन की विशेषताएँ, दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा और दर्शन की पारस्परिक निर्भरता, दर्शनशास्त्र और पाठ्यक्रम, दर्शन और शिक्षण विधियाँ, दर्शन और अनुशासन, दर्शन और पाठ्य पुस्तक, शिक्षक, दर्शन और शिक्षार्थी एवं निष्कर्ष का विवेचन स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से रूपायित है। वास्तव में दर्शन की सृजनात्मक परम्परा दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री के स्वतंत्र अध्यवसाय से ही सुरक्षित और समृद्ध होती है। इस तथ्य को भी कथ्य और सत्य रूप में प्रस्तुत किया गया है।

खण्ड छः में शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियों को लेखन का प्रस्थान बिन्दु बनाया गया है। इसमें शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत पेस्टालॉजी के शिक्षा–सिद्धान्त, शिक्षा दर्शन, जॉन फ्रेडरिक हरबर्ट का शिक्षा दर्शन, फ्राबेल का शिक्षा दर्शन आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत हरबर्ट स्पेंसर का शिक्षा दर्शन रेखांकित किया गया है। शिक्षा में सामाजिकतावादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति और वैज्ञानिक प्रवृत्ति से साम्य का विवेचन साम्य सिद्ध है। अलग बिन्दुओं में सामाजिकतावादी प्रवृत्ति के कारक, सामाजिकतावादी प्रवृत्ति की विशेषताएँ एवं अन्त में सामाजिकतावादी प्रवृत्ति का प्रभाव आदि का विवेचन है। इसी के साथ ही शिक्षा में समाहारक प्रवृत्ति को चौथा महत्त्वपूर्ण बिन्दु मानकर विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिसके अन्तर्गत समाहारक प्रवृत्ति का अर्थ, समाहरिक प्रवृत्ति और आधुनिक परिवेश, समाहारक प्रवृत्ति का शिक्षा पर प्रभाव, समाहारक प्रवृत्ति का विकास, समाहारक प्रवृत्ति की विशेषताएँ एवं निष्कर्ष का विवेचन विश्लेषण है।

खण्ड सात में शिक्षा के सामाजिक आधार का दिग्दर्शन है। इसके अन्तर्गत सामाजिक आधार का अर्थ, शिक्षा का उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, विद्यालय, समाजशास्त्र का स्वरूप, शैक्षिक समाजशास्त्र, व्यक्ति और समाज, समाजशास्त्र का अर्थ एवं उद्देश्य, शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य, क्षेत्र, महत्त्व, शिक्षा पर प्रभाव, सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा के उद्देश्य, कार्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन, विद्यालय, शिक्षक और शिक्षार्थी, शिक्षा और समाज, शिक्षा, और समाज का संबंध, समाज का शिक्षा पर प्रभाव, शिक्षा का समाज पर प्रभाव, शिक्षा के प्रति समाज का दायित्व, समाज के प्रति शिक्षा का दायित्व, भारतीय समाज का स्वरूप, भारतीय समाज का आधुनिक स्वरूप, भारतीय सामाजिक व्यवस्था के नए मूल्य आदि बिन्दुओं का आकलन, विवेचन–विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

इस 2020 में शिक्षा समाज के अनुकूल हो, को केन्द्र में रखकर विवेचन प्रस्तुत किया गया है, ताकि शिक्षा समाज की माँगों, आवश्यकताओं, आदर्शों, विचारों, मान्यताओं एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों आदि के अनुकूल हो और उनकी पूर्ति कर सके। शिक्षा सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए दी जानी चाहिए, ताकि समाज प्रगतिशील बन सके। यह खण्ड मार्क्सवादी दृष्टि का भी प्रतीक बन गया है, जिसमें समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति का प्राधान्य भी है। वस्तुतः शिक्षा सामाजिक विकास की प्रक्रिया ही है। खण्ड आठ में मूल्यपरक शिक्षा का विवेचन व्यापक फलक पर किया गया है।

प्रस्तुत कृति के लेखन में नए मूल्यों के साथ सत्यों और तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया गया है। सम्प्रति वैश्वीकरण के कारण विज्ञान ने हमें अपने वातावरण, पर्यावरण पर आधिपत्य रखने तथा अपने अनुकूल बनाने हेतु एक नव्य और दिव्य दृष्टि दी है। नई–नई विधियाँ दी हैं, जिसके परिणामस्वरूप हम शिक्षण संस्थाओं में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक विधियों का उचित प्रयोग कर भावी पीढ़ी में नवीन आदतों एवं दृष्टिकोणों का विकास कर सकते हैं।

यह तभी सम्भव होगा, जब शिक्षा जगत् से जुड़े हुए शिक्षक शिक्षार्थी, शिक्षाविद्, शिक्षा दार्शनिक आदि खुले मानस से विचार करें, सद्भाव और मैत्री भाव रखें, सहयोगी वृत्ति अपनाएँ, सूक्ष्म अवलोकन निरीक्षण करें तथा तथ्यों के आधार पर निर्णय लें। अद्यतन परिवेश में सच्ची नैतिकता और आध्यात्मिकता का भी विकास वांछनीय है, अपेक्षित है। विज्ञान, शिक्षा एवं दर्शन का सहयोग मानवहित, समाजहित एवं राष्ट्रहित के लिए करना आज की आवश्यकता है। शिक्षा की रचनात्मकता के विकास एवं संवर्धन के लिए आवश्यक है कि पाठक समाज तथा शिक्षा प्रेमी स्वयं निर्णय की प्रवृत्ति अपने में जागरित करें। अपनी क्षमताओं का विकास करें, नई गतिविधियों की जानकारी करें तथा मूल्यों को निरखने–परखने की नवीन दृष्टि विकसित करें। इसी में शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार की सार्थकता है।

भारतीय शिक्षा दर्शन के अनुसार, विश्व वाङ्मय में शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षार्थी–तीनों में पारस्परिक सद्भाव एवं सामंजस्य का भाव रहा है, जिसे वैदिक युग कहा गया। मानवीय मूल्यों की शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा की उपेक्षा के कारण आधुनिक भारतीय शिक्षा में कतिपय दोष आ गए हैं। अतएव शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय आधार के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो गया है कि मानवीय मूल्यों की महत्ता पर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का आकलन और मूल्यांकन किया जाए। शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार के द्वारा ही बालकों में मूल्यों का विकास सम्भव है।

प्रस्तुत कृति में मूल्यों की शिक्षा में नैतिक मूल्यों की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है तथा शिक्षा में समाहारक प्रवृत्ति की महत्ता रेखांकित की गई है। शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार के अपरमित महत्त्व की परिधि में यह कृति शिक्षा और समाज के बीच एक महनीय कड़ी बनकर उभरेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय द्वारा लिखित यह ''अष्टाध्यायी'' कृति अपनी चिंतन क्षमता के कारण अनेक चनौती भरे प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध है। नीति के परिप्रेक्ष्य में लिखी गई यह कृति भारतीय षड् दर्शन का जीवंत दस्तावेज है। कृतिकार डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय बधाई के पात्र हैं। कृति स्वागतयोग्य है। यह जवाहर पुस्तकालय मथुरा से 2024 में प्रकाशित है।

समीक्षा

सुमित्रानंदन पंत की बालसाहित्य सर्जना

गौरी शंकर वैश्य
आदिलनगर, विकासनगर, लखनऊ
9956087585

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। छायावादी काव्य की सम्पूर्ण कोमलता और कमनीयता उनके काव्य में साकार हो उठी है। प्रकृति के हरे–भरे वातावरण में बैठकर जब वे कल्पना में खो जाते थे, तो प्रकृति की सुन्दरता का सृजन स्वयं ही मूर्त हो उठता और मानवता के मंगलमय उन्नयन के स्वर गूंज उठते। पंत जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुर्मांचल प्रदेश को है।'

कवि सुमित्रानंदन पंत का जन्म हिमाचल की गोद में बसे उत्तरांचल 'नमस्ते उत्तराखण्ड' के अल्मोड़ा जिलांतर्गत कौसानी ग्राम में 20 मई, सन् 1900 ई. में हुआ था। जन्म के कुछ घंटों के बाद ही इनकी माँ का निधन हो गया, जिससे इनका लालन–पालन इनकी दादी ने किया। इनके पिता गंगादत्त पंत ने बालक का नाम गुसांई दत्त रखा था। इन्होंने गाँव की पाठशाला और राजकीय हाईस्कूल अल्मोड़ा से शिक्षा प्राप्त करने के बाद काशी से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। अल्मोड़ा में पढ़ते समय ही इन्होने अपना नाम गुसांई दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। इसके बाद जब वे प्रयाग के सेन्ट्रल म्योर कालेज से इण्टर कर रहे थे, तभी सन् 1919 में गाँधी जी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर पढ़ाई छोड़ दी और स्वाध्याय से ही अंग्रेजी, संस्कृत और बांग्ला का अध्ययन किया। पंत जी ने चौथी कक्षा से ही छंद रचना प्रारम्भ कर दी थी।

उन्होंने सन् 1938 में इलाहाबाद से निकलने वाली पत्रिका 'रूपाभ' का कुशल संपादन किया। सन् 1950 से 1957 तक वे आकाशवाणी में उच्च पद पर आसीन रहे। अविवाहित रहकर पंत जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन माँ भारती के चरणों में समर्पित कर दिया। पंत जी को 'कला और बूढ़ा चाँद' पर साहित्य अकादमी, 'लोकायतन' पर सोवियत लैण्ड पुरस्कार और 'चिदम्बरा' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुए। भारत सरकार ने हिन्दी साहित्य की अनवरत साधना के लिए उन्हें सन् 1961 में 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया। 29 दिसम्बर, 1977 ई. को इनका निधन हो गया।

रचनाएँ – इनकी प्रमुख रचनाएँ काव्य–कृतियाँ, नाटक, कहानी एवं उपन्यास है, विवरण इस प्रकार है–

काव्य कृतियाँ – वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्गीकरण, स्वर्णधूति, युगपथ, उत्तरा, वाणी, पतझर, गीत हंस, लोकायतन, पुरुषोत्तम राम, गीत पर्व आदि।

उपन्यास – हार

कहानी संग्रह – पाँच कहानियाँ

इसके अतिरिक्त उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी अनुवाद 'मधु ज्वाल' में किया है और अनेक संग्रहों की भूमिकाएँ भी लिखीं हैं।

प्रकृति–पुत्र पंत जी का बाल साहित्य में अवदान

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति, प्रेम और कल्पना के सुकुमार कवि हैं। वे प्रकृति के चतुर चितेरे हैं। अपने बाल्यकाल से ही प्रकृति के सुरम्य प्रांगण में क्रीड़ा करने के कारण प्रकृति और पंत दोनों एक हो गए हैं। इनकी गद्य और पद्य–दोनों प्रकार की रचनाओं में प्रकृति प्रेम का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। बालसाहित्य का नाम देकर उन्होंने कोई कृति तो नहीं रची; किन्तु मनीषी साहित्यकार सुमिता पंत के द्वारा जो बालकहानी संकलन 'आलू और बैंगन सुंदरी' के नाम से आया है, उसमें कुल 16 बाल कहानियाँ सम्मिलित हैं। इसमें सुमित्रानंदन पंत की 11 और सुमिता पंत की 5 बाल कहानियाँ संगृहीत हैं।

उक्त संकलन के विषय में सुमिता पंत की स्वीकारोक्ति है–''पंत जी खड़ी बोली के कवि थे; लेकिन कवि के साथ–साथ वे बहुत अच्छे कहानीकार भी थे। उन्होंने बहुत अधिक कहानियाँ तो नहीं लिखीं; लेकिन जो भी लिखीं, वे सब बच्चों के लिए ही है।'' 'आलू और बैंगन सुंदरी' बालकहानी संग्रह में इसी शीर्षक की एक बालकहानी के साथ–साथ हंस और राजकुमारी 'पीलू हाथी', 'पृथ्वी का क्रोध' इत्यादि 11 बाल कहानियाँ श्री सुमित्रानंदन पंत जी द्वारा सृजित की गई हैं। इन कहानियों में अनावश्यक विस्तार या उपदेश नहीं है; अपितु मस्तिष्क को कल्पना की नई उड़ान देकर भावनाओं से जुड़ाव का माध्यम बनती हैं। इन बाल कहानियों में पशु–पक्षी, भौंरे, तितलियाँ, पेड़, फूल, आसमान आदि प्रकृति की वस्तुओं को ही पात्र बनाया गया है तथा बाल सुलभ रोचक शब्द–शैली और स्वाभाविक संवादों के माध्यम से कथानक बुने गए हैं। इन सभी बालकहानियों के माध्यम से उन्होंने बालकों को स्वस्थ मनोरंजन, जीवनोपयोगी शिक्षा तथा सुसंस्कृत संदेश प्रदान किए हैं।

पंतजी प्रकृति चित्रण करनेवाले सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कविताएँ बालमन की कोमल और कोरी कल्पना की बालसुलभचीन उड़ानों और गहन अनुभूतियों से परिपूर्ण हैं। उन्होंने न केवल प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण किया, अपितु रोचक बाल रचनाओं से बच्चों को प्रकृति से जुड़कर मानवता का पाठ सीखने के लिए प्रेरित किया। 'बादल' नामक कविता में कवि की कल्पना ने बादलों को अनेक रूपों में देखा है–

''फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार।
समुद्र तैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।''

चाँदनी में तैरते हुए बादल ऐसे लगते हैं, मानों परियों के बच्चे सीप के पंख लगाकर चाँदनी के समुद्र में चन्द्रमा के किरण रूपी हाथ को पकड़कर तैरना सीख रहे हों। कवि ने संध्या के समय चिड़ियों के एक साथ

चहचहाने का कितने सुन्दर शब्दों में सजीव चित्रण किया है, देखें –

''बाँसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी वी टी टुट–टुट।''

कविवर पंत जी ने 'गाता खग' नामक कविता में प्रकृति द्वारा जग–जीवन को नया संदेश दिया है। उन्हें प्रातःकालीन पक्षी जीवन का स्वागत करते प्रतीत होते हैं, तो संध्याकालीन पक्षी जीवन का मंगलगान करते जान पड़ते हैं। इसमें बालकों को पक्षी से अच्छी सीख लेने के लिए प्रेरित किया गया है–

''गाता खग प्रातः उठकर, सुन्दर सुखमय जग–जीवन
गाता खग संध्या तट पर, मंगल, मधुमय जग–जीवन!''

प्रकृति के आँगन में हँसते हुए फूल अपने हृदय की सुगंध से संसार के आँगन को महकाने की सलाह देते हैं–'गाता खग' का निम्नलिखित काव्यांश सूक्ति जैसा मनोरम और अर्थगर्भित है–

''हँसमुख प्रसून सिखलाते, पलभर है, जो हँस पाओ
अपने उर की सौरभ से, जग का आँगन भर जाओ।''

समुद्र की लहरें बार–बार उठती हैं, फिर गिर जाती हैं। यह प्रक्रिया लक्ष्य पाने के लिए सतत संघर्ष करने हेतु प्रेरित करती है–

''उठ उठ लहरें कहतीं यह –हम कूल विलोक न पावें
पर इस उमंग में बह–बह नित आगे बढ़ती जावें।''

पंत जी ने 'बापू के प्रति' रचित कविता में युगपुरुष महात्मा गाँधी के महान व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए कहा है–

''तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन
हे अस्थिशेष! तुम अस्थिहीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव–शून्य लीन।''

चींटी को देखकर उनकी बालमन की सूक्ष्म सृष्टि की मनोभावना अद्‌भुत है–

''चींटी को देखा?
वह सरल विरल काली रेखा
तम के तागे–सी जो हिल–डुल
चलती लघु पद पल–पल मिल–जुल।''

खेतों में लहलहाती फसलें, उनसे उठती भीनी सुगन्ध, फूली सरसों की पीताभा धरती को वासंती सौन्दर्य से भर देती है। 'ग्रामश्री' का यह मनोरम दृश्य देखते ही बनता है–

''रोमांचित–सी लगती वसुधा
आई जो–गेहूँ में बाली
अरहर, सनई की सोने की
किकणियाँ हैं शोभाशाली
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध
फूली सरसों पीली–पीली
लो हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कलि, तीसी–नीली।''

वर्ष 1897 में स्वामी विवेकानंद के अल्मोड़ा आगमन की पृष्ठभूमि में पंत जी ने 'बाल प्रश्न' नामक कविता रची थी। पंत जी जन्म से ही अल्मोड़ा से जुड़े हुए थे। उनकी यह कविता सहज बाल–जिज्ञासा प्रकट करती है और उसी उदात्त भाव से माँ प्रश्नों का उत्तर भी प्रस्तुत करती है–

''माँ अल्मोड़े में आए थे, जब राजर्षि विवेकानंद,
तब मग में मखमल बिछवाया, दीपावलि की विपुल अमंद
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे, जननि नहीं चल सकते हैं?
दीपावलि क्यों की? क्या वे माँ! मंद दृष्टि कुछ रखते हैं?
कृष्ण! स्वामी जी तो दुर्गम, मग में चलते हैं निर्भय
दिव्य दृष्टि हैं, कितने ही पथ, पार कर चुके कंटकमय
वह मखमल तो भक्ति भाव थे, फैले जनता के मन के
स्वामी जी तो प्रभावान हैं, वे प्रदीप थे पूजन के।''

'प्रथम रश्मि' पंत जी की पहली कविता है, जो उन्होंने सन् 1919 में सृजित की थी और यह 'वीणा' पत्रिका में सन् 1927 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता में कवि ने सुबह की पहली किरण को नए जीवन, नई आशा और नई शुरुआत का प्रतीक माना है–

''प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ–कहाँ हे बाल विहंगिनि!
पाया तूने वह गाना?
सोयी थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर
ऊँघ रहे थे घूम द्वार पर
प्रहरी–से जुगनू नाना।''

कविवर पंत श्री प्रातःकालीन वेला में जागरण का संदेश देते हैं। इस स्वर्णिम प्रात में निद्रा–तंद्रा त्याग कर, कुछ नया करने के लिए प्रेरित करते हैं। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''जागो रे जागो, कामचोर!
डुबे प्रकाश में दिशा छोर
अब हुआ भोर, अब हुआ भोर
आई सोने की नई प्रात
कुछ नया काम हो, नई बात
तुम रहो स्वच्छ मन, स्वच्छ गात

निद्रा छोड़ो, रे गई रात।''

कल्पना ही पंत जी की कविता की मेरुदण्ड है। बालमन की कोमल कल्पना ने ही उनकी कविता को मनोहर और आकर्षक बना दिया है। 'यह धरती कितना देती है' उनकी बालकविता बाल मनोभावों को जीवंत करती है।

इसमें बालक ने अपनी बाल्यावस्था में पृथ्वी में कुछ पैसे इस आशा से बोये थे कि उनमें से रुपयों के फल लगेंगे, जैसे अन्न की खेती होती है; किन्तु पैसों के पेड़ नहीं उगे और उसकी आशा पूर्ण नहीं हो सकी। इसमें सार्थक श्रम एवं प्रयास करने का संदेश दिया गया है–

''मैने छुटपन में छिपकर पैसे बोये थे
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे
रुपयों की फलदार मधुर फसलें खनकेंगी
और फूल फलकर मैं मोटा सेठ बनूँगा
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा
बन्ध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए
मैं हताश हो बाट जोहता रहा दिनों तक
बाल कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोये थे
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था।''

कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में कवि पंत जी ने सेम के बीज बोये और जब वे उग आये, वे इसका बालसुलभ चित्रण करते हैं–

''देखा आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी–छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी
जो भी हो, वे हरे–हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चे–से!''

छोटे बच्चे सदैव अपनी माँ के पास रहना चाहते हैं और उनसे प्यार–दुलार पाना चाहते हैं। बड़ा होने पर उन्हें माँ जैसा प्यार नहीं मिलता, इसलिए माँ का प्यार पाने के लिए बच्चे सदैव छोटा ही रहना चाहते हैं। बच्चे की इसी इच्छा और स्वभाव का वर्णन करती है पंत जी की यह कविता –

''मैं सबसे छोटी होऊँ
तेरी गोदी में सोऊँ
तेरा अंचल पकड़–पकड़कर
फिरूँ सदा माँ! तेरे साथ
कभी न छोड़ूँ तेरा हाथ
बड़ा बनाकर पहले हमको
तू पीछे छलती है मात!
हाथ पकड़ फिर सदा हमारे
साथ नहीं फिरती दिन–रात।

अपने कर से खिला, धुला मुख
धूल पोंछ, सज्जित कर गात।
थमा खिलौने, नहीं सुनाती
हमें सुखद परियों की बात

ऐसी बड़ी न होऊँ मैं
तेरा स्नेह न खोऊँ मैं
तेरे अंचल की छाया में
छिपी रहूँ निःस्पृह, निर्भय
कहूँ–दिखा दे चन्द्रोदय।''

वर्षा ऋतु में मेघ गर्जन करते हुए बरसते हैं, दादुर, झिल्ली, मोर और चातक आनंदित होकर किस प्रकार मधुर ध्वनियों करने लगते हैं, उन्होंने इसका सजीव वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है–

''झम–झम झम–झम मेघ बरसते हैं सावन के
छम–छम–छम गिरती बूंदें तरुओं से छन के
चम–चम बिजली चमक रही रे उर के घन के
थम–थम दिन के तम में सपने गणते मन के
दादुर टर–टर करते, झिल्ली बजती झन–झन
म्याँव–म्याँव रे! मोर, 'पीउ–पीउ' चातक के
उड़ते सोन बलाक आर्द्र–सुख से कर क्रंदन
घुमड़–घुमड़ फिर मेघ गगन में भरते गर्जन।''

प्रकृति के कवि के रूप में पंत जी का हिन्दी साहित्य में सर्वोपरि स्थान है। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है– ''कल्पना ही पंत की कविता का मेरुदण्ड, उनकी काव्यसृष्टि का मापदण्ड है। कोरी कल्पना की बालसुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यंत तल्लीन और गहन कल्पना अनुभूतियों के चित्रण में पंत जी का विकासक्रम देखा जा सकता है।'' प्रकृति के चतुर चितेरे और बालमन की कोमल भावनाओं के अप्रतिम कवि के रूप में पंत जी सदैव अमर रहेंगे।

समीक्षा

डॉ. रमेश राजहंस और उनकी कविता

हृदयेश मयंक, मुम्बई,
मो.–9869118707

'क्या आयेंगे कभी ऐसे भी दिन' कविता संग्रह जब से हाथ लगा है, तब से रोज ही पढ़ता रहा हूँ। कुछ लिखने का मन होता, पर एक विद्वान पर कलम चलाने का डर बना रहता। यह डर मेरी अपनी अल्पज्ञता का होता। हालाँकि राजहंस जी से संबंधित अनेक पृष्ठ खुलते और लिखने को उकसाते रहते भी। उनसे किये गये संवाद, यात्राओं के अनुभव और साहित्यिक, आध्यात्मिक संगत, बैठकों के तौर–तरीके हमेशा अमिट छाप छोड़ते। चिंतन दिशा के लिए उनका साथ और सहयोग उन्हें मेरे और भी करीब लाता गया। मेरे निकट राजहंस जी का जीवन जिसे मैंने देखा, जाना एक खंड काव्य जैसा है। कई–कई खंडों में विभक्त उनके जीवन का उत्तर कांड ही मेरे हिस्से से परिचित है। अधिकांश जीवन के खंडों की

कथायें पढ़ी, सुनीं और उनके द्वारा वर्णित अनुभवों का हिस्सा ही बन पाई। दरअसल वह जीवन मुंबई शहर में आने के पहले का है। शायद यही कारण था कि उससे निकटता हो भी नहीं सकती थी। जहाँ तक मुझे याद है कि 80–81 के दौर में मेरा ट्रांसफर वर्ली के नीरी सेंटर में सीवरेज प्रोजेक्ट डिपार्टमेंट में हुआ था और मुझे अनमने पोस्टिंग लेनी पड़ी। वहीं वर्ली की मशहूर वर्ली गटर था, जिसकी बदबू पूरी एरिया को दूषित कर रखा था। उसी गटर पर एक सीवरेज ट्रीटमेंट प्लांट बनना था। वहाँ कुछ ऐसे लोगों की जरूरत थी, जो शून्य से दफ्तर शुरू कर सकते थे। मेरे अनुभवों की वजह से मुझे वहाँ भेजा गया था। दफ्तर के लोग इसे सजा की तरह देख रहे थे। मैं दबे मन से वहाँ गया और मजबूरन काम शुरू हो गया। वहाँ एकमात्र आकर्षण था कि जहाँ जिस होटल में मैं लंच को जाता था, पड़ोस की रिजर्व बैंक बिल्डिंग में राजहंस, सूरज प्रकाश व प्रेम रंजन अनिमेष का दफ्तर था। आकर्षण राजहंस जी का ही अधिक था। इनसे पहचान होने की भी एक कथा है उसका उल्लेख आवश्यक है। सुप्रसिद्ध कवि ज्ञानेन्द्रपति जी सोहन शर्मा जी के आमंत्रण पर मुंबई आनेवाले थे। संयोग बस बनारस में मेरी भेंट हुई और उन्होंने मुझसे आने की तिथि बताई। मैं और शैलेश जी को उन्हें स्टेशन से लेकर डॉ. सोहन शर्मा के निवास कांदीवली पूर्व पहुँचाना था। पर सोहन जी ने रात 1–1/2 बजे दरवाजा ही नहीं खोला। में शैलेश हक्के–बक्के से बाहर द्वार खुलने की प्रतीक्षा करते रहे तकरीबन आधे घंटे तक। दरवाजा नहीं खुला, उन्हें ले जाने लायक जगह न तो मेरे पास थी, न शैलेश के पास। हम दोनों ने साथी डी.के. ओझा जी से संपर्क किया और उनके कोई साथी आये और ज्ञानेंद्र जी को साथ ले गये। सुबह उन्हें रिसीव कर और कॉ. रामपदारथ पांडेय से बात कर उन्हें कॉ. पांडेय जी के यहाँ एक सप्ताह रखा और बाद में शैलेश जी के ही माध्यम से राजहंस जी के माहिम आवास पर टिकाया गया, जहां आप उन दिनों अकेले रह रहे थे। यह हमारी राजहंस जी से पहली मुलाकात थी। फिर तो रोज ही मैं शैलेश ज्ञानेंद्र को लेकर कहीं जाते और शाम में राजहंस जी का आवास हम सबके लिए खुला होता। यह मुलाकात मतलब और परेशानी में शुरू हुई पर साहित्य, कविता, नाटक, कहानी और यात्राओं का जैसे सिलसिला चल पड़ा। मैं याद करता हूँ तो इन चालीस वर्षों में अनगिनत बार हम मिले, यात्राएँ कीं और लेखन तथा पत्रकारिता भी की। अनुभवों व संस्मरणों से एक महाग्रंथ भर सकता है, पर यह अवसर उनकी कविताओं व सद्यः प्रकाशित कृति 'क्या आंयेंगे कभी ऐसे भी दिन' पर एकाग्र करता हूँ।

राजहंस जी भागलपुर के नसरत खानी इलाके में पैदा हुए और वहीं प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। यह खेतिहर कृषकों, विशेष रूप से सब्जी उगानेवालों का मोहल्ला था। यह तेज नारायन डिग्री कॉलेज का इलाका था। जाहिर है कि पढ़नेवाले बच्चों के जमघट का इलाका। बच्चों की सोहबत में कोर्स की पुस्तकों का आकर्षण स्वाभाविक था। ग्राम्या, पल्लवित, आँसू जैसे काव्य जुबान पर चट हो गये। कालेज के खूबसूरत दिनों में इन्होंने वो सब कुछ किया, जो अमूमन एक युवा करता है। गंगा का किनारा और नौका–विहार मुंबईवाले तरस जायेंगे, पर संभव नहीं।

कॉलेज में विज्ञान के विद्यार्थी और साहित्य, फिर इनके लिए हिकारत का विषय बन गया। हालाँकि बचपन की साहित्यिक संगत में पढ़ने का जो शौक जगा था, उसने प्रेमचंद से लेकर उस दौर के चर्चितों में सबको पढ़ा दिया। पढ़ाई के बाद बेकारी और नौकरी का संघर्ष कठिन सबके लिए होता है, इन्होंने भी पार किया और कुछ–कुछ कलमबद्ध भी करने लगे। पटना प्रवास से इनकी सुविकसित प्रतिभा को जैसे पंख लग गये। सामाजिक विचारधारात्मक लोगों के बीच बैठकों का दौर इंडियन कॉफी हाउस से शुरू हुआ, जिसने राजहंस जी को कई ख्यातिनाम साहित्यिक विभूतियों से जोड़ा। फणीश्वर नाथ रेणु की मंडली, मधुकर गंगाधर, गंगेश, गुंजन, जुगनू शारदेय और बाद में नागार्जुन, अरुण कमल, ज्ञानेंद्र पति आदि से मेल–जोल बढ़ा। नाट्यकर्मियों में अनिल कुमार मुखर्जी से मुलाकात क्या हुई कि नाटकों की दुनिया का दरवाजा खुल गया। कहानी, कविता और कुमारेंद्र पारसनाथ जी की संगत में साहित्य परवान चढ़ने लगा। यह सब कुछ समेटे मुंबई आये और उसी तरह की रुचियों के लोगों से मेल मुलाकात होती रही, जो रिटायरमेंट के बाद भी चल रही है।

मित्रों इस संग्रह पर यदि नहीं बोलूँगा, तो शायद सब बेइमानी लगेगा। इस संग्रह की पहली कविता में राजहंस जी की लेखनी का एक रंग देखें–

''अविरल गहराता सागर का श्यामल शरीर
शीतल, शांत, गंभीर
अनजाने पैठने लगता है मेरे अंदर
और मैं देखता हूँ अचंभा
जीवों का एक संसार रंग–विरंगा
गति का अनवरत नृत्य
जीवन का ऐसा संतुलित वृत्त
मैं ठगा–सा देखता हूँ
देखता ही रह जाता हूँ।'' पृष्ठ 22

यही तो रंग है मुंबई का और मुंबई के सागर तट का। एक बार जो

आया, यहीं का होकर रह गया। इतनी विविधतापूर्ण जीवन शैली कहीं अन्यत्र दुर्लभ । हाँ, आपको जीवन जीने आना चाहिए। इसी कविता का समापन करते हुए राजहंस जी लिखते हैं–

''मनुष्य जाति का अनंत भविष्य एक है
इस विशाल पृथ्वी की काल कढ़ाई में
धुलेंगी–पकेंगी हजारों–हजार अगणित
संस्कृतियाँ अपने–अपने रंग गंध स्वाद साथ
फिर तैयार होगा एक दिन
विश्व संस्कृति का अनोखा व्यंजन
मरीन ड्राइव उसी का संकेत सूत्र है
काल महासागर के किनारे मानव द्वारे
प्रकृति का विराट सौंदर्य परिकल्पना का
अत्यंत लघु रूप है।'' पृष्ठ 23

कवि राजहंस जी के नाटककार का एक बिम्ब उनकी कविता 'मुँह चिढ़ाती लड़की' में देखें–

मैं तुरंत हो बच्चा आँखे मारता हूँ, वह भी मारती है
मैं नाक सिकोड़ते हुए मुँह टेढ़ा करता हूँ, वह भी करती है
मैं जीभ से नाक छूने की कोशिश करता हूँ, वो भी करती है
मैं झुनझुना की तरह गर्दन हिलाता हूँ, वो भी हिलाती है
मैं इस सहज खेल के नैसर्गिक आनंद से हँस पड़ता है
वो भी हँस पड़ती है खिलखिलाकर और हंस पडती हैं
धवल गुल दादी की क्यारियाँ यहाँ से वहाँ तक।'' पृष्ठ 28

राजहंस जी की कविताओं में स्त्रियाँ है सदैव हर हाल में कंधे से कंधा मिलाती दुनिया के राग–रंग में मातहत का एक अनूठा चित्र है इनके यहां। धीरे–धीरे स्वभाव का हिस्सा बनता हुआ। अपनी कविताओं की आमद के बारे में कवि का बयान देखें–

''मुझे मालूम नहीं कि में कैसा हूँ
शायद कच्ची मिट्टी जैसा हूँ
कविताएँ कुम्हार मेरे पास आती हैं
मुझे गढ़ना चाहती है
पर मैं कहाँ उनकी रसभरी अंगुलियों का
दबाव झेल पाता हूँ कसमसाता हूँ
और कुछ का कुछ बन जाता हूँ।'' पृष्ठ 40

बहुत ही चर्चित व महत्वपूर्ण कविता है–'कविता पढ़ते हुए कवि को देखो'–

''कविता पढ़ते हुए कवि को देखना
जो कविता के पीछे है
भले ही उसका चेहरा दिखाई न दे,
पर उसकी नीयत, बुद्धि प्रलोभन
भाव–स्वभाव प्रयोजन सब दिखाई देंगे।'' पृष्ठ 43

आज हजारों–हजार टन कागज कविता की शक्ल में बाजार में फैला है जिसे देखो वही कवि है। चर्चा, परिचर्चा विमोचन फिर आलोचना और समीक्षा के छपने छपाने की अंधी दौड। हर तरह के खेमे गुटबाजी और साहित्यिक घात–प्रतिघात से आक्रान्त है आज का साहित्यिक परिवेश। हर ओर एक मसीहा एक आयोजन कर्ता एक पुरस्कृत और ढेरों पुरस्कार और सम्मान बाँटने वालों से भरा है शहर दर शहर। पर रोती–विलखती कविता आज भी सिसक रही है। राजहंस जी का कवि कह उठता है–

''लिखना यश के लिए, अमरता के लिए
इफरात पैसे के लिए, अहं की तुष्टि के लिए
कितना फिजूल और हास्यास्पद है
जबकि नया कुछ जीने की
नया कुछ जानने की
नया कुछ खोजने की
नया कुछ पाने की
ललक ही न हो जीवन में।'' पृष्ठ 54

इस संग्रह में अन्य बहुत ही महत्वपूर्ण कवितायें हैं, जैसे आत्म समर, बहुत दिनों से, आत्म संक्रमण, झुकाव, आकांक्षा, साये जीवन का दौर, बयान, दंश, जीवन राग, कुछ आत्मिक कुछ आध्यात्मिक, कुछ जीवन के उतार–चढ़ाव व कुछ ऐसी भी कवितायें भरी पड़ी हैं, जो राजहंस जी के अध्येता की प्रस्तुति हैं। शुरुआती दौर में साम्यवादी सोच की कवितायें प्रखरता से हैं, तो बाद की कविताओं में जीवन जगत की टकराहट की अंतरध्वनि पर्याप्त व प्रचुरता से बहुलता में है। उम्मीद और टकराहट इन कविताओं का केंद्रविंदु है। शीर्षक कविता आज के समय के संकट की निराशा में उपजी है जो शायद हम सभी कलमकारों की ओर से लिखी गई है। इस एक आलेख में न सिमटनेवाले कवि पर और एकाध लेख फिर कभी अवश्य लिखूँगा। अभी समापन राजहंस जी की ही इन पंक्तियों से–

मौत के सम्मान में झुक जाऊँ
ऐसा कोई झंडा नहीं मैं
विरोधी मुट्ठी में दब के दरक जाऊँ
ऐसा कोई सरकंडा नहीं मै
यदि झुका एक बार तो झुकने के बहाने हैं बहुत
झुक–झुक के जीने से बेहतर है एक तनी हुई मौत।''

और रमेश राजहंस का कवि न झुकेगा और न ही टूटेगा, कभी मरेगा भी नहीं, वह प्रेरित करता रहेगा हमेशा न जाने कितनी कितनी नई पीढ़ियों को। उनके शतायु होने और स्वस्थ और सक्रिय रहने की कामना करता हूं।

समीक्षा

मानवीय सरोकारों की कविता करते हैं कुलदीप शर्मा

के.आर. भारती, आई.ए.एस.
गलोड़, हमीरपुर (हि.प्र.)
9816672455

हिमाचल प्रदेश के ऊना जनपद के सुकड़ीयाल गाँव में जन्मे व पेशे से सिविल इंजीनीयर श्री कुलदीप शर्मा एक प्रतिष्ठित कवि है, जो प्रदेश और प्रदेश के बाहर बड़े आदर सम्मान से सुने और पढ़े जाते हैं। कुलदीप शर्मा की प्रथम कविता हिमाचल प्रदेश के सूचना व लोक संपर्क विभाग द्वारा संचालित प्रख्यात पत्रिका हिमप्रस्थ में वर्ष 1976 में छपी थी और तब से लेकर वे देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में निरंतर छपते रहे हैं। आकाशवाणी से भी इनकी कविताएँ प्रसारित हुई हैं। उन्हें कई राज्यस्तरीय और राष्ट्र स्तरीय पुरस्कारों से भी नवाजा गया है।

कवि कुलदीप का काव्य संग्रह 'कवि का पता' हाल ही में न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली से छपकर आया है। मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि 49 कविताओं के इस संग्रह का लोकार्पण 25 अक्तूबर, 2024 ई. ऊना में आयोजित एक भव्य समारोह में हुआ, जिसमे देशभर के प्रतिष्ठित साहित्यकार इस पुस्तक पर गहन विमर्श के लिए जुड़े। जालन्धर से सुरेश सेठ, चंडीगढ़ से सत्यपाल सहगल, दिल्ली से सतीश धर, शिमला से देवेन्द्र धर, होश्यारपुर से डॉ धर्मपाल साहिल, वरिष्ठ कवि मनोज शर्मा, मण्डी से डॉ गंगा राम राजी, काँगड़ा से राजीव त्रिगर्ती आदि का इस कार्यक्रम में शिरकत करना और इनके काव्य–कर्म पर विस्तृत चर्चा करना यही दर्शाता है कि कुलदीप शर्मा की कविता को साहित्यिक हलकों में कितनी गम्भीरता से लिया जा रहा है।

अगर पहली कविता के प्रकाशन से देखें, तो उनकी कविता ने लगभग पाँच दशकों का एक लम्बा सफर तय किया है। जाहिर है कि इस दौरान उनकी कविता कई बदलावों– प्रभावों से गुजरी होगी। कविता पर जो श्रम कवि ने किया है संग्रह में दिखता है। वे एक जागरूक कवि हैं और कविता में शब्द की गरिमा को सुरक्षित रखते हुए चलते हैं। यही कारण है कि प्रदेश और प्रदेश के बाहर राष्ट्रीय स्तर पर इस कवि की कविता ने अपनी एक अलग पहचान कायम की है। हिमाचल की हिंदी कविता का वर्णन कुलदीप शर्मा की कविता के बिना अधूरा ही कहा जाएगा, कुलदीप शर्मा के संदर्भित काव्य संग्रह का शीर्षक 'कवि का पता' मन में एक जिज्ञासा जगाता है। पुस्तक का यह शीर्षक इसी नाम से लिखी कविता से लिया गया है। यह कविता कवि ने अपने दोस्त कवि, अनूप को मुंबई जैसे बड़े शहर में ढूंढने की कोशिश को केंद्र में रखकर लिखी है, पर इसका अर्थ इससे कहीं अधिक विस्तृत और गहरा है। इसमें केवल कवि का पता ढूँढने की ही कोशिश नहीं है, यह हमें कवि होने की जिम्मेदारियों से भी परिचित करवाती है। एक कवि का पता केवल उसकी भौगोलिक लोकेशन में नहीं मिल सकता। वह अपने भीतर बाहर की स्थितियों संवेदनाओं से कितना जुड़ा है, इससे भी उसके कवि होने का पता चलता है। कवि को कहाँ होना चाहिए? कविता प्रश्न करती है–

''क्या होना चाहिए
इस इतने बड़े शहर में
कवि का पता?
इस दुनिया में
कहाँ होना चाहिए कवि को?
किसी भी शहर या कस्बे में
कौन–सी गली है कवि के लिए नामित?
जहाँ चलें, तो लगे कि इधर हो सकता है कवि
चौराहे पर
सहज ही लग जाए अनुमान
कि यहाँ मुड़कर /पहुँच सकता है, कवि तक।''

पर यहाँ कवि दरअसल अपने कवि मित्र अनूप सेठी को ढूँढ रहा है। अनूप के बहाने वह दरअसल कविता कि सृजन भूमि की तलाश में है–

''कहाँ हो सकता है अनूप?
क्या होगी उसकी दिनचर्या
खाली समय को कैसे भरता होगा
कविताओं से
हो सकता है अपना ज्यादातर समय
बिताता हो समुद्र किनारे।''

अनूप मूलतः चूँकि हिमाचल का रहने वाला कवि है, इसलिए उसका जुड़ाव जितना कविता से है, उतना अपनी जन्मभूमि से भी है, कवि कहीं भी रहे, उसके भीतर उसका बचपन, उसकी स्मृतियों उसका गाँव रहता ही है–

''हो सकता है
हिमाचल का एक उनींदा–सा गाँव
उसके साथ–साथ
सफर करता हो, लोकल पर
वही शहर के बीचोबीच
उसका रास्ता रोककर
पूछता हो, उससे उसका पता।''

देखा जाए, तो कवि का पता कोई मकान नम्बर, कोई गली नम्बर मोहल्ला हो सकता है, पर यहाँ कवि का पता ढूँढ़ने का अर्थ है उसके भीतर कुलबुलाती कविता का पता ढूँढना–

''हो सकता है कविता ले जाती हो उसे
बेचैन भीड़ में
वह निकलता हो बानगो की तरह
शब्दों के रंग पीठ पर उठाए
'और पोत आता हो / बदरंग बस्तियों पर
लौटता हो हर शाम / रंगों से उपराम।''

कवि का पता आखिरकार हमें कविता का पता बताने का काम करती है। कवि पोश अपार्टमेंट्स में भी हो सकता है या किसी जर्जर खोली में भी। इसमें क्या फर्क पड़ता है कि वह खिलाडियों, एक्टरों, राजनेताओं, स्मगलरों, धन–कुबेरों के बीच रहता है या श्रमिकों, मजदूरों के बीच। असल बात क्या है

कविता बताती है–

''इस इतने बड़े शहर में/ कहाँ हो सकता है कवि/
इसमें भी ज्यादा जरूरी है/ यह जानना/
कि कहाँ होना चाहिए कवि को?''

अंत में कविता एक शर्त रख देती है कवि होने की। यही कवि का सही पता है–

''कवि भी रह सकता है बिल्डरों, तस्करों, खिलाड़ियों
और एक्टरों या राजनेताओं के बीच
असल बात यह नहीं कि कवि कहाँ रहता है
अमल बात यह है
कि वह रहता है जहाँ भी
वह कवि ही रहता है।''

इस तरह यह कविता, कवि का पता ढूँढ़ने के बहाने हमें कवि की लोकस स्टैंडाई तक ले जाती है। कविता के अंत तक कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कवि मुंबई में रहता है या दिल्ली में या फिर हिमाचल के एक दूर दराज के सुकड़ीयाल गाँव में, कवि का असली पता तो उसकी कविता से और कविता के मानवीय सरोकारों से है।

संग्रह की एक और महत्वपूर्ण कविता है खबर की तलाश। आजकल असंख्य टी.वी. समाचार चैनल अधिकांश खबरों को इस तरह पेश करते हैं कि खबरें महज एक प्रोपगंडा बनकर रह गयी हैं और खबरी चैनलों में उन्हें अपने दर्शकों तक सनसनीखेज ढंग से पहुँचाने की होड़ है। खबरों को फटाफट प्रसारित प्रचारित कर देने की इस गलाकाटू स्पर्धा में असल खबर तो जैसे कहीं खो गयी है। वह खबर कहीं है ही नहीं। कवि उस खबर की तलाश में टी.वी. के सामने बैठा है। आजकल सत्तापोषक और सत्तालोलुप चैनल घरानों के चलते फेक खबरों का दौर है और ऐसे में बहुत तेज खबरें फिर इतनी अस्वीकार्य नहीं रहतीं।

''फटाफट आ रही हैं खबरें/
इतनी तेजी से दौड़ रही हैं/ कि पकड़ पाना मुश्किल/
गोली की रफ्तार से कान को छूती हुई
सबसे तेज चैनल पर 'सबसे तेज खबरें।'

'खबर की तालाश' कविता में कवि, टी.वी. पर घोड़े की तरह सरपट दौड़ती खबरों में से कोई एक ऐसी खबर ढूँढ़ना चाहता है, जिसमें संघर्षरत आम आदमी के हित में कुछ हो पर यहाँ तो सनसनियों, हादसों और मैचों के सिवाय कुछ सुनने–देखने को नहीं मिलता। टी.वी. चैनलों को एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ है। उन्हें टी.आर.पी. से मतलब है, न कि आम आदमी के सरोकारों से। उन्हें नहीं परवाह कि उनकी खबरों से सामाजिक सौहार्द बन रहा है या बिगड़ रहा है। कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

हाईवे का हादसा/
कोसी की बाढ़
प्रधानमन्त्री का शोक संदेश
राहतें/ सब कुछ सरपट भागता
एक शानदार विज्ञापन की/
आगोश में छुप जाता है

ठहरने का वक्त कहाँ है
इस घोर स्पर्धा में
भाग रही हैं खबरें
एक दूसरे पर गिरती हुईं
सूचना के सँकरे रास्ते पर
भगदड़ में
लगभग कुचली गयी है सच्चाई।''

इसी संग्रह में एक 'पृथ्वी' शीर्षक से कविता है, जो पृथ्वी का दु:ख बाँचती है। आज पृथ्वी से जो हरियाली खत्म हो रही हैं, नदियों का जलस्तर घट रहा है, झीलें सूख रही हैं, ग्लेशियर पिघल रहे हैं, कहीं सूखा है, तो कहीं बाढ़, देशों में परमाणु बम बनाने की होड़ है, उससे पृथ्वी कितनी आतंकित और भयभीत है, इस परिदृश्य का बखूबी चित्रण 'पृथ्वी' कविता में कवि ने किया है–

''जब चारों ओर फैल गयी खबर
कि जब नहीं बचेगी पृथ्वी
पीले पत्ते–सी काँप रही थी पृथ्वी
इतनी डरावनी भविष्यवाणियों के बीच
ब्रह्मांड के अँधेरे में खोज रही थी
एक सांत्वना भरा वाक्य
एक भरोसे वाला हाथ
पृथ्वी–पुत्र तब क्या कर रहे थे
क्या आकाश–गंगा में आया कोई
ममता भरा हाथ रखने
किसी देवता ने पोंछे उसके आँसू?''

लेकिन सबसे मार्मिक बात जो कविता में कही गयी है, वह यह है कि पृथ्वी पर रहनेवाले सबसे दु:खी लोग पृथ्वी के समाप्त होने की भविष्यवाणी से सबसे ज्यादा खुश हैं। उन्हें लगता है कि इस सामूहिक अंत के साथ उनके दु:खों का भी अंत हो जाएगा। आखिर वे समाज में जूती के बराबर ही तो समझे जाते रहे हैं, जब कि पृथ्वी को सँवारने का काम सबसे अधिक उन्होंने ही किया है। यह कई अर्थों में एक अद्‌भुत कविता है और इसे पढ़ने के बाद बहुत देर तक आँखों के आगे खगोलीय घटनाएँ और नासा की भविष्यवाणियाँ तैरती रहती हैं। कविता इस भाव को कुछ इस तरह बयाँ करती हैं–

''दुनिया के तमाम दुखी आदमी/ खुश थे...
कि अब / सामूहिक अंत के साथ ही हो जाएगा
उनके दुखों का अंत/ वे मरेंगे उन सबके साथ
जिनके कारण / जीते जी मरते रहे बार बार...''

लेकिन अंत में यही वे सब लोग जो सर्वहारा हैं, वंचित हैं और पृथ्वी से बहुत प्यार करते हैं, यही पृथ्वी के रक्षक बनते हैं। कविता का यह अंश इस कविता को एक नई ऊँचाई देता है–

''अपनी खुशी पर लज्जित हो

वे भूल गये सारी पीड़ा
सारा अन्याय / असमानता का सारा दंश
जब उन्होंने देखा पृथ्वी का अथाह दु:ख
वे दुनिया भर के दुखी लोग
तत्काल झुक गये प्रार्थना में
जानते हुए कि अंतत: उन्हीं की प्रार्थना
सुनी जाएगी ईश्वर के यहाँ
वह न भी रहता हो पृथ्वी पर
न भी जनता हो पृथ्वी को।''

ये वे लोग हैं, जिनके कारण पृथ्वी के अस्तित्व पर मँडरा रहे खतरे कम हुए। जिन लोगों ने पृथ्वी को अपने कर्मठ हाथों में सँभाल रखा है, जिनके कारण बचा हुआ है, प्रकृति का सौन्दर्य–

''उन्होंने पृथ्वी का हाथ थाम
उठा दिया विजेता की तरह
उसे पतियाया थपथपाया
दो बूँद आँसू से
उसका गला तर किया

उन रात पृथ्वी ने
कितनी ही सदियों के स्वप्न देखे
वात्सल्य में गद्‌गद
उतरता रहा उसके स्तनों में दूध।''

'गांधारी से संवाद' कविता दरअसल न्याय की देवी से एक प्रतीकात्मक; किन्तु सीधा सम्वाद है। न्याय की देवी की प्रतिमा की आँखों में से हालाँकि अब पट्टी हटा ली गई है; लेकिन सच्चाई वैसी की वैसी है। न्यायालयों में बहसें तो देखने को मिलती हैं; लेकिन इन्साफ दूर–दूर तक नहीं दिखता। जिरहों के आधार पर जीत या हार निश्चित होती है, नैतिक न्याय मिले कोई जरूरी नहीं। न्याय की देवी अंधी होने के साथ गूँगी भी है, जो अन्याय को चुपचाप देखती रहती है। कविता की स्पष्ट बयानी देखिए–

''तुमने तो बाँध ली आँखों पर पट्टी/
और चुन लिया अपने लिए अँधेरा,
ताकि देखना न पड़े / न्याय के लिए जूझते
आदमी का चेहरा...
तुम कुछ देखते भी हो/ तो ओढ़ लेते हो मौन...
पर अदालत की चौखट पर / सर पटकती है
न्याय की उम्मीद...
हथौड़े की ठकठक के नीचे/ कराहता है आहत सच।''

न्याय और धर्म की लड़ाई में तटस्थ रहना कहाँ तक तर्कसंगत है, कवि कुलदीप ने 'सम्वाद' कविता के माध्यम से महाभारत के संजय को निम्न प्रश्न उछाला है–

''युद्ध के समय तटस्थता / एक अपराध है
क्या नहीं जानते थे तुम?
संजय! जरा सोचो / व्यास के दिव्य चक्षु पाकर
तुम्हें क्या मिला?
बस संवाददाता बने / योद्धा नहीं बन पाए
इसलिए कहता हूँ संजय!
अंधे धृतराष्ट्र को / युद्ध का हाल मत सुनाओ
हो सके तो एकबार / सीधे कुरुक्षेत्र जाकर
अन्याय के खिलाफ भिड़ जाओ।''

अपने गाँव से की प्रकृति और संस्कृति में प्रीति कवि ने 'सोलासिंगी धार' कविता के माध्यम से जताई है। सोलह शिखरों वाली यह सुंदर धार अपनी गोदी में बसे गाँवों की संस्कृति को सदियों से पोषित करती आई है। यह धार न केवल अपने भूगोल के लिए, बल्कि इतिहास के लिए भी जानी जाती रही है। इस धार पर कभी कुटलैहड़ रियासत के राजाओं का मजबूत किला होता था, जो अब खंडहर में तब्दील हो चुका है। कवि जिन नकारात्मक बदलावों से आहत है, वे निम्न पंक्तियों में देखे जा सकते हैं–

''आज बरसों बाद देखा तुम्हें/ तो नजर आई तुम्हारे चेहरे पर
चिंता की गहरी लकीरें...
कब रूठकर गये तुम्हारे देवता / कब सूख गया तुम्हारे होंठों पर
बहते झरने सा राग...
तुम्हारी फसलों को कब चाट गया / दुखों का टिड्डीदल
तीज–त्योहारों, विवाह–शादियों पर/
तुम गाने लगती थी माँ के संग/
तुम्हारी चोटियों में फूट पड़ती थी / कोई पहाड़ी झंझोटी अनायास अभी भी
तुमने अंजुरी में फूल की तरह
उठा रखा है मेरा गाँव
तुम्हारे जिस्म पर
अभी भी महका हुआ है
कचनार का पेड़।''

बाजार और बाजारवाद कैसे आज समाज को अपने इंद्रजाल में फँसा रहा है, का सुंदर चित्र कवि ने 'बाजार के बीच' कविता में कुछ इस तरह खींचा है–

''कितने ही द्वार हैं
जहाँ से बाजार तक/ पहुँचा जा सकता है
वहीं जाकर पता चलता है / कि यह कोई द्वार नहीं है
विकराल जबड़ा है...
तुम एक चीज के लिए/ हाथ बढ़ाते हो
तो दस चीजें लपक लेती हैं / तुम्हारा हाथ
बासी हुई भी नहीं अभी पहली / कि दूसरी ललक आ गयी।''

कवि कुलदीप शर्मा, पुस्तक 'कवि का पता', प्रकाशन न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

समीक्षा

सुनो गंडक की आत्मिक और आत्मीय प्रेम कविताएँ

विजय कुमार तिवारी
टाटा, अरियाना हाउसिंग टावर–2
फ्लैट 201, घटकिया, भुवनेश्वर (उड़ीसा)
9102939190

सम्पूर्ण सृष्टि, पूरा संसार, पूरी प्रकृति, सम्पूर्ण मानवता, सभी जीवधारी और कण–कण में प्रेम ही है, जो जोड़ता है, जुड़ता है, हृदय में उतरकर आह्लादित करता है। सौन्दर्य बिखेर देता है और हर किसी के जीवन में सार्थकता भर देता है। प्रेम के बिना इस दुनिया में कुछ भी नहीं है और यदि प्रेम है, तो हर किसी का जीवन हर तरह से परिपूर्ण है। प्रेम को लेकर अलग से बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, सभी जानते–समझते हैं और इसके लिए तड़पते–मचलते हैं। समस्या वहाँ खड़ी होती है, जब किसी का ऐकांतिक या व्यक्तिगत प्रेम समष्टि के प्रेम को चुनौती देता है या कोई अपनी स्वतंत्र राह ले लेता है।

साहित्य की अपनी मर्यादा है, मर्यादित साहित्य ही व्यक्ति को, समाज को या देश–दुनिया को दिशा दिखा सकता है। हमारा ऐकांतिक सुख अपनी जगह महत्वपूर्ण है; परंतु सृजित होकर जब वह सबके सामने आ जाता है, तो यही समाज, यहाँ के लोग उसका मूल्यांकन करना शुरू कर देते हैं। यह मूल्यांकन ऐसे ही नहीं होता, बल्कि पूरी जिम्मेदारी से, निर्ममतापूर्वक होता है, रचनाकार उसके प्रभाव से बच नहीं पाता, उस पर उँगली उठती है और उसकी छवि तय हो जाती है। अक्सर कहा जाता है, साहित्य में समाज का चेहरा दिखाई देता है, साहित्यकार अपने अनुभवों को जोड़ते हैं; परंतु हमारे सारे अनुभव साहित्य का हिस्सा नहीं बनते या बनते भी हैं, तो सर्जक के चरित्र की चर्चा जुड़ी होती है और उसकी गहरी पड़ताल होती है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो आज अधिकांश रचनाकार आत्म–मुग्ध होकर आत्म–नियंत्रण की विवेकशील चेतना की सीमा का ध्यान नहीं रखते और बहुत सारी मर्यादाओं को तोड़ते रहते हैं। मत, मतवाद या पंथ आदि के झगड़े होते रहते हैं, समाज हित में, पूरी मानवता के हित में रचनाकारों से बेहतर सृजन की उम्मीद की जाती है। उनका अंतर्मन भी सावधान करता है। यह तो सुनिश्चित है और सभी जानते हैं कि लेखन का प्रभाव समाज पर, मानव व मानवता पर पड़ता है। साहित्य में स्वांत:सुखाय की चर्चा होती है; परंतु किसी भी तरह समाज हित को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

स्मिता गुप्ता का कविता संग्रह 'सुनो गंडक' प्रेम की आत्मिक और आत्मीय भाव–संवेदनाओं की कविताओं से भरा हुआ है। अपनी प्रेमानुभूति और उसके प्रकटन का निर्वाह उन्होंने खूब किया है और जीवन के हर प्रसंग में उनकी समझ और उड़ान को समझा जा सकता है।

हर कोई पहले कवि होता है और हर किसी की भाव–संवेदनाएँ काव्य विधा में सर्वाधिक प्रकट होती हैं। कविता से कवि जीवन्त होता है, साथ ही उसका कोई अनुभव, कोई सुख, कोई दुख काव्य के रूप में आलोकित होकर पाठकों को संवेदित या प्रभावित करता है। वैसे यह कोई बड़े विमर्श का विषय नहीं है और इसके पक्ष या विपक्ष में तर्क या विरोध की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि दोनों की अपनी–अपनी स्थितियाँ और अपनी–अपनी आवश्यकताएँ हैं। सच पूछिए, तो कविता के बिना हमारा काम नहीं चलता; क्योंकि संसार में, हमारे जीवन में काव्य रचा–बसा होता है। कविता में सौन्दर्य–बोध, मानवीय संवेदनात्मक अनुभूतियों के साथ स्वत: उभरता रहता है, कविता सुख व आनन्द देती है और विपरीत परिस्थितियों में संबल प्रदान करती है।

समीक्षात्मक चिंतन या विवेचना के क्रम में मेरा ध्यान साहित्य रच रहे नए कोपलों पर अधिक जाता है, इनके अनुभवों में ताजगी होती है। ये पके–पकाए नहीं होते, बल्कि प्रेम–बोध, सौन्दर्य–बोध और संघर्ष की नूतन भावनाओं से भरे होते हैं। ये सीख रहे होते हैं और यथार्थत: जी रहे होते हैं। इसलिए इनके लेखन में कोई कच्चापन या कुँआरापन होता है। इन्हें सहारा देने की जरूरत है, सहलाने–सँवारने की जरूरत है; बल्कि बेहतर तरीके से गढ़ने की जरूरत है। मुझे लगता है, इनके अनुभव बहुत महत्वपूर्ण हैं और इनके लेखन को साहित्य में जगह मिलनी ही चाहिए। हिन्दी साहित्य की यात्रा में एक भयानक दौर गुजरा है, कमोबेश आज भी जारी है और हर काल–खण्ड में इन्हें वह स्थान नहीं मिलता, जो मिलना चाहिए। बहुत सारे स्वनामधन्य पुरोधाओं ने इनकी और इनके लेखन की उपेक्षा की है, बल्कि सच तो यह है, अनेकानेक भ्रूण हत्याएँ हुई हैं। इससे किसी का भला नहीं होता, बल्कि साहित्य का सर्वाधिक नुकसान होता है।

स्मिता गुप्ता का जन्म गंगा–गंडक के संगम पर बसे शहर हाजीपुर में हुआ है। हमारे लोक–जीवन में संगम का अपना महत्त्व है। ऐसी मान्यता है कि संगम जीवन्त तीर्थ तो होते ही हैं, वहाँ हर किसी की प्राण–चेतनाएँ जागने लगती हैं और भीतर के सारे भाव पुष्पित–पल्लवित होने लगते हैं। संगम और उसके आसपास ऊर्जा का प्रवाह बना रहता है, इसीलिए हमारे ऋषियों–मुनियों का वास किसी–न–किसी संगम पर रहा है। स्मिता गुप्ता ने निश्चित ही इस रहस्य को जाने–अनजाने समझा है और उनके मनो–संसार में प्रेम–काव्य का प्रस्फुटन हुआ है। इसका स्वागत होना चाहिए और इन कविताओं को पढ़ने–समझने की आवश्यकता है।

हिन्दी संपादक, फारवर्ड प्रेस, नई दिल्ली के नवल किशोर कुमार ने बदल रही हिन्दी कविता और इसमें स्त्रियों की कविताओं पर अपना मन्तव्य रखा है। इन कविताओं को पढ़ते हुए उनका मन पहले छायावादी युग में जाता है और शीघ्र ही इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में लौट आता है। वह देखते हैं कि एक स्त्री गंडक नदी की चिंता कर रही है, वह नदी को भूलती नहीं है, बल्कि उसी को संबोधित करके अपने पंखों को खोलती है और शब्दों का सहारा लेकर काव्य सृजन करती है। उनकी यह पंक्ति भी देखने लायक है। यदि आप आधुनिक स्त्री विमर्श के विस्तृत आयाम को देखेंगे, तो मुमकिन है कि स्मिता गुप्ता की कुछ कविताओं से आप असहमत होंगे; लेकिन यह एक असफलता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए कि आज भी बहुसंख्यक स्त्रियों स्वयं के अस्तित्व का सही आकलन नहीं कर पाती हैं। उन्होंने स्मिता गुप्ता को उनके पहले संग्रह के लिए बधाई देते हुए लिखा है–''यह काव्य संग्रह आपको स्त्री–अनुभूतियों के विविध आयामों से परिचित कराएगा, आपको ऐसे दृश्य दिखाएगा कि आपको लगेगा कि इन कविताओं में जो कुछ भी है, वह सब आपकी आँखों के सामने या तो घटित हो चुका है या फिर घटित हो रहा है। मेरा खयाल है, ऐसे सटीक विश्लेषण के बाद किसी और के कहने या विचार करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है।''

अपने आत्म–कथ्य में स्वयं स्मिता गुप्ता लिखती हैं–'गंड़क नदी' मेरी प्रेम कविताओं के आधार अवलंबन के रूप में है।' वृंदा और विष्णु प्रसंग इस नदी को नारायणी के रूप में पौराणिक बना देता है और वह लिखती हैं–''यह नदी मुझे प्रेम के प्रतीक और बिंब के रूप में दिखी, इसलिए मेरी कविताओं में आधार व अवलंबन भी बनी। प्रेरणा स्रोत भी बनी है। प्रेम को

लेकर उनका यह कथन गौर करने योग्य है मेरी दृष्टि में प्रेम एक ऐसी शक्ति है, जो विभिन्न जज़्बातों–भावनाओं के जरिए हमें विभिन्न रिश्तों से जोड़े रखती है। उनका यह प्रश्न उचित ही है, अगर हम अपने निजी जीवन से प्रेम को तिरोहित–विलोपित कर दें, तो हम अपने घर–परिवार, देश और समाज को कैसे प्यार कर सकते हैं?''

'सुनो गंडक' काव्य संग्रह में उनकी कुल छियासठ कविताएँ हैं, जिनमें अधिकांश प्रेम के विभिन्न भावों से भरी हैं और बिल्कुल ताजी हैं। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कवयित्री ने साहस का परिचय दिया है और प्रकृति के नाना बिंबों का सहारा लेकर आत्मिक अनुभूतियों को प्रस्तुत करते हुए पाठकों के हृदयों को धड़का दिया है। शायद कवयित्री अपने सामान्य जीवन में ऐसी ही हैं, प्रेम करती हुई, प्रेम से भरी हुई और प्रेम बाँटती हुई। उनकी कविताओं के शीर्षक अलग तरीके से प्रभावित करते हैं, वह सीधे संवाद करती है और उनके शीर्षक होते हैं–'सुनो गंडक', 'ओ गंडक', 'बोलो प्रियतम', 'चलो हम इश्क करें' या 'मेरे गुलमोहर'। यह उनकी अपनी शैली है और उनकी भाषा में अद्‌भुत जीवंतता है। बावजूद कुछ ठहरावों के, मुझे उम्मीद है, ये कविताएँ साहित्य में अपनी जगह बनाएँगी और सराही जाएँगी।

'सुनो गंडक' कविता में वह गंडक नदी का साक्षी भाव से मानवीकरण करती है। अपने प्रेम मिलन, आलिंगन की स्मृति संजोती है और दृश्य बुनती है–जब सूर्य झुक रहा था/सन्ध्या का रक्तिम मुख चुमने के लिए/ प्रणय के लिए आलिंगन के लिए/ तब तुम्हारे तट पर आए थे/दो तन/दो मन। उनका हृदय सुखद स्मृतियों से भरा हुआ है और वह उन दोनों के लिए ईश्वरीय चेतना में तलाश करती है–राधा–कृष्ण या लक्ष्मी–नारायण। 'साक्षी' वृंदा व श्रीहरि के प्रेम की अद्‌भुत कविता है, जिसमें गंडक साक्षी है। गंडक के जल में 'दो छवि', 'गंडक के तट पर', 'गंडक का जल' और 'ओ गंडक' जैसी कविताओं में उन्होंने अपने मनोभावों, प्रेम–मिलन आदि को जीवन्त किया है। दोनों साथ–साथ तट पर विचरण कर रहे हैं, जल में दोनों की छवियों मधुर भाव पैदा कर रही हैं।

हमारे काव्य में प्रतीति की परम्परा रही है, किसी को देखने से किसी और की याद आती है, नायिका नायक को कुछ वैसा ही बताना चाहती है–जब तुम देखोगे गंडक नदी को/कल–कल करते, छल–छल बहते/उसके शीतल, निर्मल, मृदु जल को तुम्हें मेरी प्रीत याद आयेगी। कवयित्री को इतने से संतोष नहीं है, वह गहरे भाव से सब कुछ याद दिला देना चाहती है–जब एकांत में छूओगे अपनी अंगुली/उस स्पर्श में, उस छुअन में, मेरे होठों का चुंबन/मेरे तन–मन में रची–बसी मेरी साँसों की अगन/मेरी प्रीत की याद दिलाएगी। प्रेम की शीतलता लिए हथेली में गंडक का जल है, उसमें नायिका की छवि, हृदय का दर्पण और अन्तर्मन का रंग–रूप है। वह प्रतीक्षा नहीं, बल्कि पहल करती है, हथेली को चुमती है, अपने अधरों की अमिट मुहर लगा देती है और आग्रह करती है–इस जल को तुम छलकने न देना/इसमें कोई अनु कण गिरने न देना/जल के दर्पण में समाहित मेरे रूप को/बिखरने न देना, टूटने न देना। वह बावरी सी है। नायक उसे आलिंगन में ले लेता है और वह कृतार्थ–सी अनुभव करती है। 'प्रेम की मौन अभिव्यक्ति', 'अब हृदय पर कोई प्रतिबंध नहीं है' जैसी कविताओं में कवयित्री उसी रौ में बहती हुई दिखाई दे रही है।

'मेरी देह' कविता में उनका बेटे के साथ चकित करता आत्मीय भाव मुखरित हुआ है। जादू की छड़ी, बौरायी हवा, तुम बिन, मेरा प्रेमी मन, हम इतिहास के सर्जक हैं जैसी कविताएँ पाठकों को प्रेम के नाना भाव दृश्यों की सहयात्रा करवानेवाले हैं। अंधेरा, अंजोरिया, मन–मृग, प्रेम चदरिया और प्रेम–सभी कविताएँ उनके मनोभावों को खुलकर व्यक्त करते हैं और अँधेरे, अकेलेपन की व्यथा चित्रित करते हैं। इस तरह संयोग–वियोग दोनों ही परिस्थितियों को उन्होंने जीवन्त और यथार्थतः परिभाषित किया है अपनी कविताओं में।

'अलभ्य प्यार' चाँद व चकोरी की कविता है, जिसे उन्होंने किसी नैराश्य भाव में तमाम प्रेमिकाओं को सावधान किया है। 'प्रेम की पौध' और 'प्रेम की सौगात' दोनों प्रेम के सहज प्रकटीकरण की कविताएँ हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता, इनकी सुगंध फैलती ही है। तुम्हारा इंतजार है और 'तुम्हारी छुअन' कविताओं में प्रतीक्षा और मिलन के गहरे भाव उभरे हैं। उनके लिए छुअन या स्पर्श बहुत मायने रखता है, वह बार–बार उन अनुभूतियों को प्रकट करती हैं और प्रेम के गहरे उन्मत्त भाव दृश्य रचती हैं। 'विष का प्याला' उपालंभ के भावों की कविता है, वह जिस तरह अपना प्रेम प्रकट करती हैं, शिकायतें भी लिख डालती हैं और प्रेम को अमृत समझकर विष पीना मानती है। प्यार का प्रतीक कविता में गली, मोड़, चौराहा उनका प्रेम सर्वत्र पसरा हुआ है, वह संकेत करती है, नाना बिम्बों–प्रतीकों से सजाती–सँवारती है और बताती है कि उसी गली में है उसका घर।

एक तरह से देखा जाए, तो इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ पुरानी स्मृतियों को जीवन्त करती हैं। एक ख्वाब, दोस्त, थेथर दिल, ताप, बहुत याद आती है तुम्हारी, सात जन्मों का प्यार और शरद की रात जैसी कविताएँ इन्हीं भाव–संवेदनाओं से जुड़ी हैं। यादों को जीवन्त करना और सुखी होना या जटिलताओं को सुलझा लेना कवयित्री की कोई अपनी शैली है और वह अपनी कविताओं में सुखद क्षणों का रहस्य उजागर करती है। पुनरावृत्ति या बार–बार एक ही भाव पर अटके रहना साहित्य में पुनरुक्ति–दोष माना जाता है। हालाँकि मेरा किंचित् भिन्न चिंतन है, ऐसा तभी संभव है जब वह प्रेम की प्रगाढ़ता में हो, आकंठ डूबी हुई हो और उसे कुछ और सूझ न रहा हो। नायिका भेद में मुग्धा, अधीरा या प्रगल्भा की चर्चा होती ही है। इसे उनका साहस माना जाना चाहिए और उनके मनोभावों का सम्मान होना चाहिए।

'नन्हा पौधा' में वह प्रियतम के नाम का विरवा लगाती है, 'मेरे सनम' में उनके रंगों का अनुभव करती है और 'तुम वैसे ही हो' कविता में सहजता से सब कुछ स्वीकार कर लेती है। ऐसे दृश्य तभी चित्रित होते हैं, जब प्रेम अपनी उच्चतर स्थिति में हो और एक–दूसरे पर सम्पूर्ण विश्वास हो। 'प्यार के लिए कविता में उनके मौलिक चिंतन–भाव उजागर हुए हैं।

'मोहपाश' प्यार के लिए दर–बदर भटकती लड़कियों की विचित्र मनःस्थिति की कविता है, अकुलाहट, बेचैनी और ख्वाबों की प्यासी स्थिति में मात्र एक बूँद बनकर प्रेमी टपकता है, फिर भी सुकून मिलता है। उनका मूल भाव है–मौत ही मिलेगी फँसकर प्रेम के फाँस में। वह न जाने किसकी तलाश में भटक रही हैं। 'कांटों की चुभन' प्रेम करती नायिका के प्रतीक्षा के बावजूद प्रेमी के न आने से उपजी पीड़ा की कविता है। 'अब तो आओ कृष्ण कन्हाई' कविता में कोरोना काल के विपदा से भरे दृश्य हैं और कवयित्री बचाव के लिए अपने आराध्य कृष्ण को पुकार रही है। प्रतीक्षा का अपना सुख है, बादल ने संदेश दिया है प्रियतम के आने का, नायिका के साथ सम्पूर्ण प्रकृति हर्षित है, विश्वास बढ़ता गया है और प्यार गहरा हुआ है। 'अंतरंग दोस्त' दोस्ती की पवित्र भावनाओं से भरी कविता है। दोस्त प्रकाश स्तम्भ है, जाड़े की गुनगुनी धूप है, भाँग के नशे की तरह है और उसका बोलना आरती व अजान जैसा है। वह प्रियतम को अपना अंतरंग दोस्त मान लेती है–हाँ, तुम हो / तुम ही मेरे

अंतरंग दोस्त / तुम ही हो मेरे अंतर्मन के दोस्त। 'सोम रस' और 'तुम्हारा प्यार' कविताएँ जीवन की गहन सच्चाई बताती हैं। कवयित्री पहले सावधान करती है, फिर प्रेम की आग में तपने को कहती है और अंत में सहजता से आश्वासन देती है–

''तो मेरा महुआ शराब–सा यह जोबन
मादक सौन्दर्य का, प्रीत का सोम रस
मैं स्वयं नैनों के प्याले में भर–भरकर
तुम्हें घूँट–घूँट पिलाऊँगी जीवन भर।''

'तुम्हारा प्यार' कविता की प्रेयसी अत्यन्त संतुष्ट है और उन सारे बिंबों, प्रतीकों में सुखी होती है। ऐसे दृश्य कम ही देखने को मिलते हैं जब प्रेमी–प्रेमिका एक–दूसरे से संतुष्ट होते हैं। कवयित्री के ये भाव सुखद संदेश देनेवाले हैं और सीख भी। 'राज' कविता नायिका के ऐसे ही अनेक अतिरेकों, सुखद और संतुष्ट मनोभावों से भरी है–

''मेरे दिल में धड़कता है वो
मेरे प्राणों में बसता है वो
मेरी रूह में समा गया है वो
एक एहसास जगा गया है वो।''

मोहब्बत, वो दम भरते हैं. मन मन्दिर, प्रेम कविताएँ और यौवन जैसी कविताओं में पति–पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका के बीच के सारे मनोभाव, आपसी सम्बन्ध, आग्रह दुराग्रह, संतुष्टि असंतुष्टि, मिलना–बिछड़ना और सारे प्रेमिल भाव खूब उजागर हुए हैं। उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं है और ना कोई परहेज किया है, बल्कि सब कुछ अपने अनुभव के आधार पर या जो आसपास देखा है। खुलकर लिखा है। प्रेमियों के बीच विनोद के क्षण आते हैं, उलाहनाएँ दी जाती हैं या विरोध, करुणा व प्रेम की परिस्थितियाँ उभरती हैं और दोनों एक–दूसरे के लिए यथा विह्वत होते हैं–

''आज देखा मैंने वे बेकल हुए
मेरे आँसुओं को देखकर तड़प उठे
वो एक पल भी न सह सके
मेरी तड़प, मेरे अश्कों का ताप
और मुँह मोड़कर चले गए।''

कवयित्री के सारे प्रश्न चिन्तित व व्यथित करनेवाले हैं। 'मन मन्दिर' कविता का भाव यही है, एक बार यदि किसी से प्रेम हो गया, वह नहीं मिला, फिर भी वह मन मन्दिर में बसा रहेगा। प्रेम कविताएँ कविता में कवयित्री प्रेम की कोई भिन्न परिभाषा रचती है और प्रेमी के प्रेम भावों को सम्मान देती है–

''वो एक प्रेमी था जिसके सम्मान में
एक स्त्री ने तन नहीं, मन किया था अर्पित।''

'यौवन' कविता में स्त्री–जीवन में यौवन के आगमन की स्वाभाविकता और उसका प्रभाव वर्णित है–प्रश्नोत्तर शैली में कवयित्री का संवाद देखिए–

''कहते हैं सब, तुम पर यौवन आया है
तेरे तन–मन पर यौवन का मद छाया है
मैंने कहा–यौवन के मद में
कौन नहीं मदहोश हुआ है
किसका तन नहीं महका है
किसका मन नहीं बहका है।''

कविता के अंत में स्वयं को दोषमुक्त करते हुए वह लिखती हैं और यौवन के आने की स्वाभाविकता बताती हैं–

''यौवन पर किसी का वश नहीं
मेरा भी कोई दोष नहीं।''

'बोलो प्रियतम' और 'तड़प' कविताओं के प्रश्न और प्रसंग विचलित करनेवाले हैं। कभी–कभी ऐसा होता है, प्रेमी एक–दूसरे से प्रेम तो करते हैं, परन्तु एक–दूसरे के हो नहीं पाते। कवयित्री गहरे भावों के साथ चिन्तन करती है और स्त्री मन की व्यथा व परिस्थितियों को लेकर पीड़ित होती है। 'मेरा मन', 'कविता लिखना', 'प्रेम पाती', 'सर्द तनहाई की रात' और 'प्रीत की कोई शर्त नहीं' जैसी कविताएँ प्रेमी–प्रेमिका के संयोग–वियोग को मुखरित करती है। वह प्रतीक्षा करने के वजाय पहल करने में विश्वास करती है और अपने मन की भावनाओं, इच्छाओं को सामने रख देती है। विरह के क्षण को भी उन्होंने मुक्तसर होकर लिखा है और प्रेम में शर्त के विरुद्ध आवाज उठाती हैं।

प्रेम प्राचीन और सर्वप्रिय विषय है, जिसको लेकर आदिम काल से लिखा जाता रहा है और आज भी इसका आकर्षण कम नहीं हुआ है। यह कभी कम होनेवाला भी नहीं है और मनुष्य, देव–दानव, जीव–जन्तु, प्रकृति–सर्वत्र इसका आलोक पसरा रहता है। हर काल–खण्ड में प्रेम नित्य–नवीन होकर उभरता है, इसको लेकर नए–नए प्रयोग होते रहते हैं और हर प्रेमी मन प्रेम की अनुभूति के साथ ही सुख–शान्ति व चैन महसूस करता है। स्मिता गुप्ता ने अपनी कविताओं में प्रेम के हर रूप–स्वरूप को गहराई से समझा है और खुलकर लिखा है। भाव–दृश्य चित्रण में अत्यधिक खुलापन, रोचक तो है; परन्तु किसी विशेष छवि में बाँध सकता है।

'तुम्हारा आना वसंत', 'स्मृतियों की खिड़की', 'चलो हम इश्क करें'–जैसी कविताओं में उनकी संवेदनाएँ सशक्त तरीके से उभरती हैं, उनका मन मानो भर गया है और प्रकृति के नाना बिम्ब चित्रित होते हैं–

''और इश्क करने का सलीका सीखने के लिए
जंगल में चलें
नदी, पहाड़, पेड़ों से इश्क करना सीखें।''

इसी कड़ी में 'गुलमोहर', 'मेरे गुलमोहर', 'क्षितिज पर गुलमोहर'–जैसी कविताएँ कवयित्री के मनोभावों से जुड़ती हैं और किसी गहरी भाव–संवेदनाओं में ले जाती हैं। 'प्रेम जादू' कविता में प्रेम को वह किसी तिलस्म या जादू की तरह अनुभव करती हैं और हर पंक्ति में प्रेम जीवन्त हो उठता है। किसी भी नायिका की यह चरम स्वीकृति है, जो पाठकों को आकर्षित करती है और झकझोर कर रख देती है। 'सुनो गंडक' संग्रह की अंतिम कविता है–'मेरी माँ' जिसमें उन्होंने अपने तरीके से माँ को, माँ की ममता को, उनके हुनर को, रीति–रिवाजों को अनेक प्रसंगों में समझा है, उनके ये सारे दृश्य यथार्थ हैं, जुड़ने–जोड़नेवाले हैं और इस तरह माँ पर यह एक सशक्त कविता है, वह लिखती हैं– 'सचमुच कितनी अद्‌भुत है मेरी माँ!'

इस तरह यह संग्रह ध्यान खींचनेवाला है, उनकी भाषा में हिन्दी, उर्दू, भोजपुरी के शब्द भरे पड़े हैं, हालाँकि अब इस तरह के मिश्रण को स्वीकृति मिल रही है; परंतु प्रवाह कहीं–न–कहीं बाधित होता ही है और शैली प्रभावित होती है। अक्सर कहा करता हूँ, हर साहित्यकार को खूब पढ़ना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए, ताकि प्राचीन से लेकर समकालीन लेखन की दशा–दिशा ज्ञात हो और साहित्य की गहरी समझ हो।

समीक्षित कृति 'सुनो गंडक' (कविता संग्रह), कवयित्री–स्मिता गुप्ता, मूल्य रु 225/–,प्रकाशक–न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली

समीक्षा

फूलों के आलते में रेत की दीवार : संवेदनाओं और संघर्ष का सुंदर समन्वय

रीतेश भारद्वाज
डिप्टी मैनेजर
NTPC- Ltd, HR
मो. 7458012707

कहानी महज घटनाओं का क्रम नहीं, बल्कि स्मृति और कल्पना के उस स्पंदन का नाम है, जहाँ जीवन अपने सबसे असहाय, सबसे सुन्दर और सबसे सत्य रूप में सामने आता है। यह वही स्थान है जहाँ शब्द, मौन से संवाद करते हैं, जहाँ एक पात्र की आह में पूरे समाज की गूंज छिपी होती है और एक अधूरे वाक्य में पूरा युग बोलता है। 'फूलों के आलते में रेत की दीवार' डॉ उपमा शर्मा द्वारा लिखित एक ऐसा कहानी–संग्रह है, जो स्त्री की चेतना, श्रम की पुकार, प्रेम की विरूपताओं और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में बदलते मनुष्यता–बोध की गहराइयों तक उतरता है। इस संग्रह की कहानियाँ न केवल विषय–वस्तु की विविधता में समृद्ध हैं, बल्कि शैलीगत दृष्टि से भी एक गहरी साहित्यिक संवेदना से लबरेज़ है। संग्रह की पहली कहानी 'मोक्ष' पितृसत्ता की जमीन पर लिखी गई अति मार्मिक कहानी है। पितृसत्ता वो सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचा, जिसमें पुरुषों को परिवार, समाज और सत्ता के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों का प्रभुत्व हासिल होता है। यह व्यवस्था न केवल महिलाओं को सीमित करती है; अपितु कई बार उनके अधिकार यहाँ तक कि स्वतंत्र सोच पर भी पहरा लगा देती है। पितृसत्ता हमारे समाज में इस हद तक हावी है कि मोक्ष कहानी में एक पढ़ा–लिखा डॉक्टर लड़का अपनी पत्नी को घर से इसीलिए निष्कासित कर देता है कि वह एक साजिश का शिकार हो रात भर अकेले अस्पताल में रहती है। पति प्रेम में आकंठ डूबी पत्नी जब पति की चौखट पर प्राण त्याग देती है, तब यही पति पत्नी की मृत देह पर अपना अधिकार जताते हुए न सिर्फ उसकी सहेली से उसकी मृत देह को छीन लेता है, अपितु माँ–बेटे हिन्दू संस्कारों की गलत व्याख्या दे, उसके अंतिम संस्कार का हक भी उसकी सहेली से छीन लेते हैं, जो हर दु:ख–दर्द में उसके साथ रही थी। यह धारणा कि केवल पति ही पत्नी का अंतिम संस्कार कर सकता है, पारंपरिक सोच की एक जड़ है, जो स्त्री को उसके स्वाभाविक अधिकारों और सम्मान से वंचित करती है। यह सोच बताती है कि स्त्री की अंतिम श्रद्धांजलि भी पति के हाथ में ही है, जिससे स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकार की अवहेलना होती है।

शीर्षक कहानी 'फूलों के आलते में रेत की दीवार' एक गहरे स्त्री अनुभव, त्याग, और आत्म–सम्मान की कथा है। इसमें प्रेम, समर्पण, और पितृसत्तात्मक क्रूरता की परतें एक–एक कर उघड़ती हैं। यह कहानी एक ऐसी स्त्री की है, जो प्रेम में सब कुछ न्यौछावर कर देती है–घर, परिवार यहाँ तक कि अपने आपको भी। यह नारी केवल प्रेम नहीं करती, वह अपने प्रेमी की पसंद, रंग, स्वाद, आदतें–सब कुछ अपने खून–पसीने से सींचती है; लेकिन अंत में उसे एक 'सेवा' की तरह आँका जाता है। यही पितृसत्ता का मूल रूप है–जहाँ स्त्री की आत्मा की कोई कीमत नहीं, बस उसके शरीर की बोली लगाई जाती है। कहानी 'चदरिया झीनी रे झीनी' वंचित वर्ग की स्त्री की टूटती आशाओं, मेहनत की घुलती चमक और सामाजिक असमानता की चुभती हुई कथा है। कहानी की विषयवस्तु श्रम और पूँजी के बीच के विषम संबंधों को गहराई से उजागर करती है। रेशमा की आशाएँ–छत की मरम्मत, बच्चों के कपड़े, स्वेटर और अपने लिए एक झाँझर सपनों की तरह बुनती हैं; लेकिन जब मेहनताना मुट्ठी में आता है, तब वह सब कुछ रेत की तरह फिसल जाता है। रेशमा की आकांक्षाएँ किसी विलासिता की नहीं, बल्कि मूलभूत आवश्यकताओं और घोड़े से आत्म–सुख की हैं; लेकिन वह भी समाज और व्यवस्था से उसे नहीं मिल पाता। एक ओर मिनी लाखों की साड़ी पहन इठला रही है, दूसरी ओर साड़ी बुननेवालों को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं। यह वर्ग संघर्ष और शोषण की विडंबना को बहुत प्रभावी ढंग से उजागर करता है।

कहानी 'गंध' जातिगत भेदभाव और दबे हुए अपराधों की दास्तान है, जो अतीत की गलियों से वर्तमान की विवशताओं तक बहती है। यह कहानी एक नारी के आत्मबोध, नैतिक साहस और विवेकपूर्ण प्रतिरोध की कथा है जो रक्त के रिश्तों से न्याय को बड़ा मानती है। कहानी की संरचना चित्रात्मक और भावनात्मक है। आप दृश्य–दर–दृश्य एक गहन सस्पेंस और स्मृति की परतें खोलते चलते हैं–बारा, कंगन, तहखाना, कंकाल–सब एक–एक प्रतीक बनते हैं और अंततः पता चलता है कि गुड्डन ने स्मृतियाँ संजोई थी और हवेली ने अपराध। गुड्डन का निर्णय स्त्री की पारंपरिक सहनशीलता को तोड़ता है। वह पुलिस नहीं बुलाती, पर नैतिक सजा दे देती है, जो संघर्ष और करुणा का एक दुर्लभ संतुलन दर्शाता है।

''तुम दोनों औलाद के रहते हुए भी औलाद को तरसो।'' कहानी का नैतिक और भावनात्मक चरम है। यहाँ नायिका कोई शोर नहीं करती, वह एक खामोश विद्रोह है।

कहानी 'अंधेरे–उजाले' सामाजिक असुरक्षा और मानवीय विश्वास के द्वंद्व को बहुत सधे हुए ढंग से प्रस्तुत करती है। अंत में पाठक के मन में यह प्रश्न रह जाता है कि क्यों आज के परिवेश में हमारे मन का डर हमें हर अनजान को गलत मानने लगा है? इसके लिए कौन दोषी है–परिस्थिति या समाज? यह एक सूक्ष्म, प्रभावशाली और भावनात्मक रूप से सशक्त कहानी है, जो पाठक के मन में देर तक बनी रहती है।

कहानी 'पागल' की नायिका 'दिती' को माँ, पति, सास से लेकर प्रेमी तक अपने–अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करते हैं। कहानी एक युवा गरीब घर की लड़की दिती के इर्द–गिर्द घूमती है, जिसे एक माँ अपने शारीरिक अक्षम बेटे के लिए बहू बनाकर लाती है। पति से उपेक्षित जीवन जी रही दिती की मुलाकात संचित से होती है और दोनों के बीच एक भावनात्मक रिश्ता जन्म लेता है। यह परिस्थितियाँ भी दिती की सास द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। यह रिश्ता सामाजिक मर्यादाओं के खिलाफ होते हुए भी सौंदर्य और करुणा से भरा है, जो दिती के सूने संसार में प्रेम की बारिश लाता है; लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। जब संचित, जिसने दिती की जीने की चाह दी थी, अचानक गायब हो जाता है, तब पाठक को एक गहरा धक्का लगता है। अंत में पह उजागर होता है कि संचित को 'खरीद' लिया गया और प्रेम को पैसे से तोला गया। यह कथा पूँजी और संवेदना के टकराव पर करारा प्रश्न उठाती है।

कहानी 'टूटे बंध' एक गहरे भावनात्मक, प्रेम और क्षोभ से भरी कहानी, जिसे पढ़कर मन सिहर उठता है। इसमें प्रेम का वह रूप चित्रित हुआ है, जो पाने से अधिक देने की चेष्टा में जीता है। यह कहानी धीरे–धीरे एक ऐसे शिखर की ओर ले जाती है, जहाँ प्रेम त्याग बन जाता है और जीवन की नश्वरता से टकराता है। यह रचना प्रेम, पीड़ा और त्याग की त्रयी को

अद्वितीय संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है। कथानक एक धीमी नदी की भाँति बहता है, कहीं शांत, कहीं गहरे, और कहीं–कहीं ऐसा बहाव लिये हुए, जो पाठक को भीतर तक भिगो देता है। यहाँ प्रेम उस स्तर पर पहुँचा हुआ है, जहाँ उसकी परिभाषा में 'प्राप्ति' गौण हो जाती है और 'त्याग' की भावना सर्वोपरि। यह वह प्रेम है, जो किसी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करता, बस अपनी सम्पूर्णता में जीता है। कहानी खुशियों की वापसी मातृत्व, प्रेम, आत्मनिर्णय और सामाजिक परंपराओं के द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशीलता और भावनात्मक गहराई के साथ चित्रित करती है। कथा की नायिका 'दीया' एक ऐसी स्त्री है, जो पति की असमय मृत्यु के बाद टूटती नहीं, बल्कि अपने जीवन को नई अर्थवत्ता देने के लिए आगे बढ़ती है, वह भी बिना समाज की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए। कहानी का केंद्रीय भाव है माँ बनने की आकांक्षा; लेकिन पारंपरिक ढाँचे से अलग हटकर आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन द्वारा 'दीया' की यह यात्रा समाज के उन पूर्वग्रहों से टकराती है, जो एक अकेली स्त्री के मातृत्व को सहजता से नहीं स्वीकारते; किंतु यही संघर्ष रचना को विशेष बनाता है। यह सिर्फ एक महिला के गर्भधारण की कथा नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक यात्रा, भावनात्मक पुनर्जन्म और नारी–स्वायत्तता का उत्सव है।

कहानी 'निर्णय' समाज की गहरी और सच्ची परतों को संवेदनशीलता और प्रभावशाली ढंग से उघाड़ती है। यह नारी सशक्तीकरण, पारिवारिक रिश्तों, पीढ़ियों के संघर्ष और पितृसत्तात्मक सोच की टकराहट की एक मार्मिक अभिव्यक्ति है। यह कहानी एक शिक्षित, आत्मनिर्भर लड़की 'प्राची' की है, जो अपने प्रेमी 'विहान' से विवाह करने को इच्छुक थी; किंतु जब बात उसके 'स्व' और विशेषकर उसकी माँ की अस्मिता की आती है, तो वह पूरी दृढ़ता से उस रिश्ते को नकार देती है। कहानी माँ–बेटी के गहरे संबंधों, भारतीय समाज में लड़कियों से जुड़ी परंपराओं और उन 'रीतियों' के विरोध में एक सशक्त स्वर बनकर उभरती है, जो आज भी स्त्रियों को दूसरों की इच्छाओं के अधीन देखना चाहती हैं।

कहानी 'ब्लैकहोल' एक गहरी भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक यात्रा है, जिसमें प्रेम, त्याग, सामाजिक दूरी और नियति की क्रूरता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

कहानी 'खाली पैमाना' में प्रिया अपने पुराने मित्र आकाश से मिलने जाती है, जिसे वह वर्षों से जानती और भरोसा करती रही है; परंतु वहाँ पहुँचकर उसे झटका लगता है, जब आकाश अपनी पत्नी अवंतिका के सामने उसे पहचानने से इनकार कर देता है। प्रिया जो केवल दोस्ती की पवित्रता से जुड़ी थी, आहत होकर निकल जाती है। यह सोचते हुए कि पुरुष और स्त्री के बीच दोस्ती के रिश्ते को समाज कितना संदेह की नजर से देखता है, यहाँ तक कि दोस्त भी डर के मारे उससे मुँह मोड़ लेते हैं। यह एक स्त्री की पीड़ा है, जिसे झूठी उम्मीदें और विश्वासघात ने झकझोर दिया है। इसमें यह संदेश भी है कि अगर एक पुरुष स्त्री से मित्रता करता है, तो उसे साहस भी रखना चाहिए कि वह उस रिश्ते को सम्मानपूर्वक स्वीकारे।

अवांछित या बोझ समझे जानेवाले बुजुर्गों को घोंघे के रूपक से बुनी कहानी घोंघे बेहद मार्मिक और संवेदनशील तरीके से तीन पीढ़ियों के संबंधों, संवादहीनता और एक पिता की निःस्वार्थ करुणा को चित्रित करती है। अंतिम दृश्य जिसमें 'बहू नमक नहीं डालती'–बहुत गहरा प्रतीक है। उसके भीतर का दृष्टिकोण बदल चुका है। यह घोंघों अर्थात् बुजुर्गों से घृणा नहीं, बल्कि उनके प्रति सम्मान और स्वीकार्यता का प्रतीक बन जाता है।

कहानी 'जागना एक संवेदना का' आज के मशीनीकरण के युग में रोबोट बनते इंसान पर आधारित है। कहानी यही संदेश देती है कि मानवीय संवेदनाएँ कभी पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकतीं और यही हमें रोबोट से अलग बनाता है।

कहानी 'मन के जीते जीत' एक प्रेरणादायक और भावनात्मक कथा है, जो गगन नामक एक दुर्लभ और जटिल बीमारी से जूझते बच्चे की संघर्ष यात्रा और उसमें उसके माता–पिता तथा डॉक्टर दीप्ति की सहभागिता को गहराई से दर्शाती है। कहानी का केंद्रीय पात्र गंभीर रोग से पीड़ित एक नवजात शिशु गगन है, जिसकी जीवन की संभावना डॉक्टरों द्वारा लगभग नकार दी गई थी; लेकिन एक डॉक्टर दोस्त दीप्ति के मार्गदर्शन, नेहा–साहिल की तपस्या और गगन की जिजीविषा से बच्चा गगन एक 'हौसले की मिसाल' बनता है। कथानक की संरचना प्रेरणादायक और क्रमबद्ध है, जो पाठक को शुरू से अंत तक बाँधे रखती है। कहानी दूसरी 'विदाई' एक ऐसी सामाजिक सच्चाई को उजागर करती है, जो लाखों घरों की दीवारों के भीतर घटती रहती है। बहू से जुड़ी अनकही अपेक्षाएँ, उसका दोहरा श्रम और उसकी चुप्पी। यह कोई असाधारण या फिल्मी घटना नहीं, बल्कि रोजमर्रा के जीवन की वह असाधारण त्रासदी है, जिसे हम अक्सर 'नॉर्मल' मानकर टाल देते हैं। इस दृष्टि से यह कथा एक सशक्त सामाजिक दस्तावेज बन जाती है। यह कहानी आज के समय में 'नारी सशक्तीकरण' की उस दिशा की वकालत करती है, जिसमें बहू को बेटी समझने का अर्थ केवल मुँह से कहना नहीं, बल्कि व्यवहार में अपनाना होता है। लेखक ने कोई नाटकीय विद्रोह नहीं रचा, बल्कि सहज बुद्धिमत्ता और आत्मसम्मान से बदलाव लाया। यही इसकी खूबसूरती है।

इन कहानियों में स्त्री–विमर्श केवल सामाजिक जाल में फँसी नायिकाओं की पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्रियों की इच्छाओं, असमंजसों, विद्रोहों और आत्म–अन्वेषण की प्रक्रिया को भी सघनता से उकेरता है। कहीं प्रेम एक टूटती हुई दीवार है, तो कहीं वह उम्मीद की एक क्षीण लौ। कहीं तकनीक और ए. आई. के माध्यम से प्रेम और संवेदना के प्रश्न उठते हैं, तो कहीं श्रमिक जीवन के कठोर यथार्थ से साक्षात्कार होता है, जहाँ पसीना, भूख और स्वप्न एक साथ साँस लेते हैं।

भाषा बेहद प्रभावशाली, आत्मीय और मौलिक है। संवादों में मिठास और संवेदनशीलता है। फूलों के आलते शीर्षक स्वयं में एक प्रतीक है कोमलता और सौंदर्य के बीच रेत की अस्थिर, टूटती दीवारों का संकेत। यह संग्रह बार–बार यह प्रश्न उठाता है कि क्या प्रेम, अस्तित्व, श्रम और स्मृति जैसे बुनियादी मानवीय अनुभव, इस तेजी से बदलती दुनिया में अब भी हमारे भीतर शेष हैं? यह संग्रह आज के समय की चुनौतियों, दरकती संवेदनाओं और पुनः जन्म लेते प्रतिरोधों की कथा है। इसकी कहानियाँ पाठक को भीतर तक झकझोरती हैं और उसके सोचने के ढंग को नया आयाम देती हैं। यह महज कहानी नहीं, बल्कि समय की परतों में दर्ज वो दस्तावेज हैं, जो आनेवाले समय में और भी अधिक प्रासंगिक साबित होंगे। यह संग्रह उन सभी पाठकों के लिए है, जो साहित्य को सिर्फ पढ़ना नहीं, महसूस करना चाहते हैं।

पुस्तक–'फूलों के आलते में रेत की दीवार' (कहानी संग्रह)

लेखिका डॉ उपमा शर्मा, प्रकाशक–लिटिल बर्ड पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–154

समीक्षा

युगीन सच्चाइयों को व्यक्त करती कहानियाँ

ज्योति जैन
1432/24, नंदानगर, इन्दौर
मो. 9300318182

जब भी आधुनिक हिंदी कथाकारों की बात होती है, सहसा ध्यान आता है वरिष्ठ साहित्यकार सूर्यकांत नागर का....। वे विशिष्ट विषय वस्तु, सहज भाषा और उन्नत शिल्प के लिए जाने जाते हैं। कथा संग्रह के क्रम में 'ग्यारह कहानियाँ' उनका बारहवाँ कहानी संग्रह है। उनकी शैली और कथ्य ऐसा है कि पुस्तक हाथ में आने के बाद उसे छोड़ पाना संभव नहीं होता। उनकी कहानियों के पात्रों के साथ पाठक स्वयं को बहता हुआ महसूस करते हैं।

संग्रह की पहली कहानी है 'कायर'। ट्रेन की गति को स्वर दिया है, चकई के चकधम... चकई के चकधम... सुनते ही लगता है मानो ट्रेन में बैठे हैं। इस आवाज के साथ ट्रेन पूरे वेग से दौड़ रही है। पात्रों से किस तरह पाठक अपने को जोड़ता है, यह इसका श्रेष्ठ उदाहरण है.। पूरी कहानी रेलयात्रा के दौरान की है, जहाँ हर सहयात्री के मनोभावों का वर्णन वखूबी किया गया है। फिर चाहे वह चप्पल–जूतों को सहेजना हो या चैन से बैग बंधा होने के बाद भी रात में उसको बार बार टटोलना हो.. या लघुशंका पर जाने न जाने की ऊहापोह हो... सहयात्री के खर्राटे हों...हर बात का बारीकी से चित्रण हुआ है। कहानी के अंत तक पाठक संशय में घिरा रहता है कि नायक ने अंतिम समय तक चप्पल खोने के लिए माफी माँगी या नहीं...? अंत में जब पाठक जानता है कि नायक अपनी गलती नहीं स्वीकार पाया, तो पाठक का भी दिल उसी तरह बैठ जाता है, जिस तरह नायक बैठा रह गया इज्जत के कांकरे हो जाएँगे... जैसे वाक्य मालवा की मिट्टी की सौंधी सुगंध का आभास देते हैं।

'तमाचा' कहानी भी पाठकों को झकझोरती है। यह बहुत ही सीधी–सरल बात है कि जब कोई व्यक्ति आपसे बार–बार मिलने के लिए आतुर है, तो यह मानवीय कमजोरी है कि सोचता है कि सामनेवाला उससे किसी स्वार्थवश ही मिलना चाहता है। यही कहानी का तमाचा है कि जो व्यक्ति नायक से मिलना चाहता हो, वह कुछ लेने नहीं, देने के लिए आया है। और अंत ''कुछ कह दिया हो तो माफ करें।'' पढ़कर पाठक द्रवित हो जाता है।

इस कहानी का एक और पहलू है, जो हम अपने दैनिक जीवन में कई बार अनजाने में कर जाते हैं कि किसी को वस्त्रों से जज करते हैं। यदि कोई वस्त्रों से अप–टू–डेट है, तो हम उसे जेंटलमेंट समझते हैं, चाहे उसके मन के भीतर वैसा न हो; लेकिन अगर व्यक्ति के कपड़े व्यवस्थित नहीं है, मेले–कुचैले हैं या वह गरीब है, तो हम यह मानकर चलते हैं कि वह अवश्य ही कुछ माँगने आया होगा। हम उसके प्रति शंकित बने रहते हैं। हम कपड़ों से उसके विशाल हृदय का अंदाज नहीं लगा पाते। इसका चित्रण यहाँ लेखक ने बहुत सूक्ष्मता के साथ किया है। 'त्रिशंकु' कहानी पढ़ी, तो लगा पति–पत्नी जीवन के सहयात्री होते हैं। सप्तपदी में एक दूसरे का साथ देने का वचन देते हैं, लेकिन विडंबना यह कि अपने दाम्पत्य जीवन में कई बार पति पत्नी के परिजनों को मान नहीं दे पाता, जिसके वे अधिकारी हैं। दु:ख इस बात का कि वे पत्नी से इस बात की पूरी उम्मीद रखते हैं कि वह उसके परिजन के प्रति पूरी तरह समर्पित रहे। यही भाव 'त्रिशंकु' कहानी का है। जब नायक अपनी पत्नी के भाई को साथ रखने की बात पर तो आपत्ति उठाता है, लेकिन बात जब स्वयं अपने भाई के बेटे की आती है, तो चाहता है उसे साथ रखना, लेकिन इस अपराध बोध के कारण अपनी पत्नी से वह कह नहीं पाता, जो उसने पत्नी के भाई को न रखते वक्त कही थी। बड़ा दिल रखा होता, तो आज उसकी स्थिति त्रिशंकु जैसी न होती। दरअसल यह अंतर्द्वन्द्व की कहानी है।

मुंबई की चकाचौंध के पीछे छिपी पीड़ा को बयान करती कहानी है... 'कोहरे से लिपे चेहरे'...। मुंबई जैसी माया नगरी हर एक को अपनी ओर आकर्षित करती है। चहल–पहल, पूरी रात शहर का जागना, अथाह समुद्र और ग्लैमर की चकाचौंध...ये सब हर व्यक्ति को आकर्षित करते हैं और व्यक्ति यह मानकर चलता है कि मुंबई यानी सब कुछ अच्छा, मुंबई यानी सबकुछ ग्लैमरस; लेकिन उस चकाचौंध के पीछे जो खोखलापन है, वो बहुत बारीकी से इस कहानी में उजागर हुआ है। कहानी में बच्चों की मनोदशा को शिद्दत से उकेरा गया है। उन्हें ऐसी बात के लिए शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है, जिसके वह कतई जिम्मेदार नहीं है। यही कहानी का सर्वाधिक मार्मिक अंश है।

कहानी की अंतिम पंक्तियाँ सीधे दिल में उतरती है, जब नायक अपने दोस्त के घर से लौटते हुए एक नजर उसके घर 'शांति सदन' पर डालता है और उसे लगता है, उसकी अशांत परछाई उसके पीछे घसीटती चली आ रही है।

'जल्दी घर आ जाना' कहानी... ऐसे पुरुष की कथा है, जो हम अपने आस–पास भी देखते हैं, तो पाते हैं कि जब पत्नी मायके या कहीं और जाती है, तो पुरुष को लगता है कि चलो.. आजादी मिली। कुछ दिन मजे से काटेंगे यार दोस्तों के साथ। साथ ही इस बात को भी लेखक ने छुआ है कि पत्नी के बिना कहीं–न–कहीं पति अधूरापन, अकेलापन महसूस करता है। इसका अभाव खलता है। कहानी में व्यंग्य का पुट भी है, जब पति को अपनी पुरानी दोस्त मिल जाती है और वह बेमतलब ही हवा में उड़ने लगता है। एक पुरुष की फितरत को नागरजी ने बहुत ही ईमानदारी के साथ चिह्नित किया है, लेकिन अंत में नायक अपनी पत्नी की कमी महसूस करता है और मेज पर जमी धूल पर लिखता है... 'जल्दी घर आ जाना'...।

समाज में अमीरी–गरीबी को लेकर कई रचनाएँ लिखी गई हैं। लेखक ने 'जरी वाला जैकेट' कहानी में जग्गू के माध्यम से विवाह समारोह में काम करनेवाले एक विशेष तबके के लोगों की पीड़ा उजागर की है। जूठन से भूख मिटाना कहीं–न–कहीं इस तबके की मजबूरी है। मेवे–मिठाई की प्लेटें थामकर खड़ी युवतियाँ जो चार पैसे कमाने के लिए कार्य करती हैं, उन्हें देख नायक जग्गू को विचार आता है, क्यों न वह भी अपनी बेटी को भी वेट्रेस के काम पर लगा दे।

संयुक्त परिवार में तंगहाली को कम करने के लिए बेटी हाँ कर देती है और गर्व महसूस करती है कि वह पिता का हाथ बँटा रही है, लेकिन वह यह भूल जाती है कि समाज में ऐसे भी पुरुष हैं, जो जिंदा गोश्त के शौकीन होते हैं। पुरुषों की इस मानसिकता को लेखक ने उघाड़ा है; लेकिन अंततः नायक जरी वाला जैकेट पहने और बेटी ठेकेदार द्वारा दी गई चमकीली झीनी साड़ी पहने रोज की तरह साइकिल के कैरियर पर बैठ जाती है। दोनों के तन और पेट साथ रखे हुए चले जा रहे हैं। दोनों ही एक दूसरे से आंखें चुराते हैं क्योंकि सभ्य और संभ्रांत समाज का कड़वा सच, घिनौना चेहरा दोनों के सामने था। विडंबना कि उन्हें अपना चेहरा छुपाना पड़ रहा था।

एक अन्य कहानी है 'घड़ा'। पढकर थोड़ा धक्का लगा। दादा–पोते की कहानी में दादा हर बार पोते पर विश्वास करते हैं और पोता जो आज की युवा पीढ़ी को प्रतिनिधित्व करता है, हर बात पर अपने दादा के साथ दगा करता है। अंत तक लग रहा था कि शायद पोता सुधर जाएगा; लेकिन कहानी का अंत यह होता है कि पोते का झूठ मुंबई तक पहुँच जाता है और उस झूठ को सच बना दिया जाता है और बड़ी बात यह है कि वह इस झूठ पर मंद–मंद मुस्कुरा रहा होता है।

'बलि' एक मार्मिक कहानी है। इस दुनिया में स्वार्थ तो है, लेकिन किस हद तक है, यह 'बलि' कहानी के माध्यम से हमारे सामने आता है। अपनी तमाम आस्था के साथ अपनी बेटी के लिए देवी के दर्शन करने जानेवाली स्त्री

अपनी बच्ची को बचाने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगाती है, लेकिन नैतिक साहस खो चुके स्वर दूसरों को परमार्थ का पाठ पढ़ाते हैं, पर खुद अमल नहीं करते। अंत में नदी में तैरता मगरमच्छ खूँखार हो जाता है और विकृत मानसिकता वाले लोग स्वयं को बचाने के लिए माँ और बेटी की बलि चढ़ा देते हैं।

'खबर से बाहर' कहानी भी बेहद मार्मिक है, जहाँ किशोर नायक विकास, पिता का साया सिर से उठ जाने के कारण जिम्मेदार बन जाता है और अखबार बाँटता है। माँ के ऊपर विकास के अलावा उसके दो भाई बहनों का दायित्व भी है। मजबूरीवश वह एक बंगले पर काम करती है और जैसा कि हमेशा होता है कि बंगले से कोई चीज चोरी हुई, तो वह नौकर ने ही चुराई होगी, यह तय मान लिया जाता है। चोरी किया हुआ हार विकास यानी नायक की माँ नहीं चुराती है; लेकिन तब तक देर हो चुकी होती है और वह थाने में बंद हो जाती है। हार घर पर मिलने पर मालकिन को अफसोस होता है और वह पुलिस थाने से अपनी शिकायत वापस ले लेती है; लेकिन खाकी वर्दी के पीछे छिपे हुए ये नापाक और बहशी भेड़िए नैना को बर्बाद कर देते हैं। इस प्रकार पुलिस की दूषित वृत्ति पर भी प्रहार किया गया है। बचपन से पुलिस की वर्दी का सम्मान करनेवाला विकास चाहता था कि मैं भी पुलिस में भर्ती होऊँगा, आहत हो जाता है। क्रोध में संदूक में सहेज कर रखी पुलिस की ड्रेस को निकाल उस पर थूकता है और माचिस जलाकर उसमें आग लगा देता है। इस प्रकार अपना प्रतिरोध जताता है।

'तबादला' कहानी राजनेताओं की ईमानदारी पर लिखी कहानी है। एक आम व्यक्ति का मित्र जब मुख्यमंत्री बन जाता है या किसी बड़े पद पर पहुँच जाता है, तो उसे आस रहती है कि वह मेरा मित्र है, इसलिए मेरी मदद जरूर करेगा।

नायक बार–बार के तबादलों से परेशान है, लेकिन जब मुख्यमंत्री से मिलने जाता है, तो इस उम्मीद के साथ कि शायद तबादला रुक जाए; लेकिन वह नहीं जानता था कि सिस्टम ऊपर से ही भ्रष्ट है। वहाँ सीधे, सभ्य और ईमानदार व्यक्ति के लिए जगह नहीं है। वह निराश होकर घर लौट आता है; लेकिन दूसरे दिन अखबार पढ़कर अचंभित होता है कि मुख्यमंत्री ने इस्तीफा दे दिया है; क्योंकि हाई कमान को पता है कि उसके जैसे सज्जन व्यक्ति की राजनीति में कोई पैठ नहीं हो सकती। नायक के सामने एक नया सच आता है। उसकी सोच की पूरी शृंखला बदल जाती है और अब क्रोध के बजाय उसे मुख्यमंत्री पर दया हो आती है।

'खेल खेल में' कहानी में बताया है कि विवाह पूर्व के संबंधों को लेकर लड़की हमेशा चौकन्नी रहती है। ऐसे में पुराना प्रेमी सामने आ जाए, तो पति और परिवार के सम्मुख उसकी स्थिति बिल्कुल निरीह प्राणी जैसी हो जाती है। उसे भय है कि कहीं भेद खुल न जाए। तब नायक खेल–खेल में ही उसके मजे लेने के लिए ऐसा कुछ बोल जाता है, जो नायिका को अपनी जीवन–लीला समाप्त करने के लिए मजबूर कर देता है और यह अपराध–बोध नायक को कँपा देता है।

इसी पुस्तक के अगले भाग में समीक्षात्मक आलेख हैं, जिसमें प्रभाकर श्रोत्रिय, प्रमोद त्रिवेदी, बी.एल.आच्छा, चरणसिंह अमी और रमेश दुवे ने नागरजी के व्यक्तित्व–कृतित्व पर प्रकाश डाला है। इनमें समीक्षकों ने नागर जी की रचना क्षमता के विविध आयामों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। नागर जी की प्रमुख चिंता मानवीय मूल्यों के संरक्षण की है। वे मनुष्य के दोहरेपन को उजागर करते हैं और यह भी कि नागर जी के पास एक कलफ विहीन अर्थगर्भी भाषा है, जो पाठक के साथ संवाद स्थापित करने में सहायक है।

11 कहानियाँ, सूर्यकान्त नागर, अद्विक प्रकाशन, दिल्ली–92

कविता

अपराजिता हूँ

डॉ. आशा सिंह 'सिकरवार'
अहमदाबाद (गुजरात)

स्वयं से लड़ना है अनेक मोर्चे पर
फिर से खुद को तैयार करती हूँ
और सैकड़ों
सैकड़ों लड़ाइयों के लिए

2. उदासी

तुम्हें मेरी उदासी बिल्कुल भी मंजूर नहीं थी
अपनी हँसी भीतर छिपाकर रखते थे
मेरी बेपरवाह हँसी कहीं नज़र न लग जाए,
डरते थे
मज़ाल है तुम्हारी हयाती में
एक भी मोती आँख से गिर जाए
जब गले से लगाते हुए मुझसे कहते
हम दो नहीं एक हैं तुम्हारे अथाह प्रेम के सम्मुख
तब दुख सिकुड़कर कितना बौना हो जाता था
जैसे साबूत मूँगफली
बस, छिलका उतारने भर की देर
कि हँस पड़ते दोनों
वहीं बैठकर फुटपाथ पर खाते
अनंत मूँगफलियाँ एक के बाद एक
छिलके उतरते जाते
हम होते जाते एक
उदासी जाने कहाँ फुर्र हो जाती फिर
लौट जाते हम अपने–अपने ठिकाने पर
अब जब उदासी आने को होती है
उससे पहले तुम्हारी याद
उपस्थित हो जाती है बाँहें फैलाकर
देखकर हमारा चिर मिलन
उदासी दबे पाँव लौट जाती है
उस क्षण में वह भी नहीं देती दख़ल
ऐसी हजार–हजार उदासी कबूल है मुझे
जिसमें तुम्हारी मौजूदगी दर्ज़ होती है।

अपराजिता हूँ
जब अपनी पराजय
महसूस करती हूँ निपट अकेली
एकांती क्षण में
अश्रुधारा बह निकलती
नहीं दीखता कोई
सम्पूर्ण भू पर
खड़ी निर्झर पेड़ जैसी
तब पहुँचती सूरज के पास
सोख लेता है वह
मेरी पीड़ा
मैं भर जाती हूँ पुनः ऊर्जा से
बैठ जाती हूँ घने
छायादार वृक्ष के नीचे सोचती हूँ
कैसे ज़रा बनकर झुका है मेरे ऊपर
देखती हूँ उसके निःस्वार्थ भाव को
वह नहीं पूछता राहगीर से
क्या है मज़हब
क्या है जाति
नहीं उसके चित्त में
कोई लिंग भेद
वह सबकी भूख को
एक नज़र से देखता है
सबके लिए उसके पास है मीठा फल
सबको बाँटता है एक जैसी छाँव
कि लौट आती हूँ अपने में
फिर से रक्त दौड़ने लगता है
मेरी नसों में
जीने की ज़िद फिर से मनाती है मुझे
मुझे जीना है
अभी और, और जीना है मैं अपराजिता हूँ
नहीं हार सकती मैं
नहीं रुक सकती मैं

आलेख

डा. राधेश्याम बन्धु
बी 3/163, यमुना विहार, दिल्ली
मो. 9868444666

नवगीत ने गीतकाव्य की अस्मिता की रक्षा की

हिन्दी गीतकाव्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, फिर भी हमें उसके विकासक्रम को समझना बहुत जरूरी है। हिन्दी कविता में अज्ञेयवादी नई कविता का वर्चस्व जब से बढ़ा है, आधुनिकतावादी गद्य कवियों और समीक्षकों ने पारम्परिक गीतकाव्य को 'मृतप्राय' कहकर हाशिये में डाल दिया था। सन 50 के बाद तो हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में गीतों का छपना भी बन्द हो गया था और उसकी जगह पर सिर्फ गद्य कविताएँ ही प्रकाशित होने लगी थीं और आज भी वही हो रहा है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आम जनता कविता से दूर चली गयी। शायद आधुकितावादी गद्य कवियों का यही अभिप्राय भी था। इस साजिश का पर्दाफाश सबसे पहले नवगीत ने किया और इस प्रकार नवगीत ने 'समग्र चेतना' के माध्यम से गीतकाव्य को पुनस्थापित करने का अभियान भी प्रारम्भ कर दिया। आज वर्चस्व के इसी संघर्ष का सुपरिणाम है कि नवगीत का आज सर्वत्र स्वागत होने लगा है। 'नवगीत का लोकधर्मी सौन्दर्यबोध' पुस्तक इसी अभियान का एक औजार है। शायद इस सच्चाई से बहुत कम लोग परिचित हैं। यहा तक स्वयं बहुत–से गीतकार भी नहीं परिचित है; क्योंकि वे सिर्फ गीत लिखते हैं, पढ़ते नहीं है और न उन्हें अपनी परम्परा का ही ज्ञान है।

आइये हम खड़ीबोली की गीतकाव्य की परम्परा पर भी एक नजर डालकर देख लें। जैसा कि हम जानते हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में केवल ब्रजभाषा में ही पारम्परिक छन्दों की रचना हो रही थी। स्वयं भारतेन्दु भी ब्रजभाषा में ही छन्दों की रचना कर रहे थे; किन्तु स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन के दबाव के कारण हिन्दी कवियों के सामने भाषा की विशेष कठिनाई उपस्थित होने लगी थी। ब्रजभाषा में राष्ट्रीय चेतना की विचारपूर्ण कविताएँ लिखना आसान नहीं था, जो पूरे देश में गाया जा सके। इसी के समाधान के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले खड़ी बोली में राष्ट्रीय विचारोत्तेजक लेख लिखना शुरू कर दिया था; किन्तु कविता में फिर भी खड़ीबोली का प्रयोग नहीं कर सके। कविता में खड़ीबोली का प्रयोग विशेषरूप से 'द्विवेदी युग' में महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से कुछ कवियों ने प्रारम्भ किया था। बाद में पूरे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की कविताओं में खड़ीबोली का प्रयोग होने लगा था। द्विवेदीजी के इस पहल से समस्त भारत में देशभक्ति के गीतों का सृजन खड़ीबोली में होने लगा था। अंग्रेजों के शासनकाल में छायावादी कवियों में भी अधिकांश कवि अंग्रेजों के चाटुकार बने रहे और उन्होंने देशहित के बजाय अपने हितों का ध्यान रखा; किन्तु वहीं निराला, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', हितैषी, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे देशभक्त कवि थे, जिन्होंने अपनी क्रान्तिकारी कविताओं से स्वतंत्रता सेनानियों और क्रान्तिकारियों का हौसला बढ़ाया। रामप्रसाद बिस्मिल स्वयं एक निर्भीक वीररस के कवि होने के साथ एक क्रान्तिकारी भी थे। उनकों 'काकोरी कांड' के अभियुक्त क्रान्तिकारी के रूप में आजन्म 'काले पानी' की सजा हुई थी और उन्हें 'अंडमान निकोबार' भेज दिया गया था। कहते हैं कि सरदार भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल की निम्न पंक्तियों को गाते हुए फाँसी के तख्ते पर झूल गये थे। पंक्तिया देखें–

''सरफरोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है,
देखना हैं जोर कितना, बाजुए कातिल में है,
वक्त आने पर बता देंगे, तुझे ऐ आसमाँ,
हम अभी से क्या बतायें, क्या हमारे दिल में है?

यह क्रान्ति का ज़ज़्बा हर काल में, हर ईमानदार, देशभक्त कवि और कलाविद में रहा है; किन्तु वहीं यह भी सच है कि हर काल में जनविरोधी अवसरवादी, सुविधाभोगी, सामन्ती प्रवृत्ति के सत्ता समर्थक कवि और लेखक भी रहे हैं, जो अपने हितों की रक्षा के लिए और सत्ता के पुरस्कारों और सुविधाओं के लिए अपनी लेखनी को बेचते भी रहे हैं। इस तरह के अवसरवादी कलावादी कवि और विद्वान सरकारी कुर्सियों पर आज भी विराजमान है और यथास्थितिवादी सोचवाले विभागाध्यक्षों, आधुनिकतावादी कवियों और विद्वानों को प्रोत्साहित करके वैश्विक पूंजीवाद को मजबूत कर रहे हैं। अंग्रेजों के समय के नवजागरणवाद ने वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण और विकासवाद का रूप धारण कर लिया है। इस भूमण्डलीकरण का प्रभाव हमें प्रयोगवादी, कलावादी गद्य कविता में विशेषरूप से देखने को मिल रहा है। ऐसे में भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक अस्मिता का सवाल बहुत जटिल हो गया है। यह हमारे विवेक पर निर्भर करता है कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति के विभिन्न चमकदार उपादानों में हम किसे चुनते हैं? यहीं मूल्यवादी और मूल्यहीन जिन्दगी का अन्तर भी स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाता है।

कविता की आत्मसमीक्षा का सवाल कवि या लेखक कुछ भी लिखने के लिए स्वतंत्र है और उसके लेखन में उसके व्यक्ति स्वातत्र्य से उसे कोई वंचित नहीं कर सकता। प्रजातंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्ति स्वांतत्र्य, शिक्षा स्वातंत्र्य की सुविधा सबको सुलभ है; किन्तु कुछ लोगों ने इस व्यक्ति स्वातंत्र्य का दुरूपयोग भी किया है। व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर कुछ कवि इतने स्वच्छन्द हो गये हैं कि अपनी अभिजनवादी अहंकार की सन्तुष्टि के लिए किसी भ्रष्ट नेता, मंत्री, अधिकारी, माफिया से समझौता करने के लिए भी अक्सर तैयार हो जाते हैं और वे उनके हाथ की कठपुतली बनकर आम आदमी, गरीबों और निम्न–मध्यमवर्ग के खिलाफ सोचने और लिखने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। यहाँ यह सवाल स्वत: हो उठता है कि क्या किसी कवि या लेखक के लिए यह समझौता न्याय संगत है? इस पर हमें कवि या लेखक के रूप में कलम उठाने से पहले अवश्य सोचना चाहिए। इसलिए मैं कवियों से तीन सवाल पूछना जरूरी समझता हूँ। वे सवाल हैं–

1. कवि कविता क्यों लिखता है?
2. कवि क्या लिखता है?
3. कवि किसके लिए लिखता है?

'नवगीत का लोकधर्मी सौन्दर्यबोध'

समय के अन्तराल में चाहे जो बदलाव आये हों, गीत की लोकधर्मी सामाजिक चेतना का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ है। गीतों में आये कालगत और प्रवृत्यात्मक परिवर्तनों के बाद भी उसका सातत्य अक्षुण्ण बना हुआ है; किन्तु छायावाद के बाद छायावादोत्तरकालीन गीतकाव्य में समष्टिवादी यथार्थवाद के कारण जो सकारात्मक बदलाव आया है, वह निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण घटना है। इस बदलाव ने गीतों के सौन्दर्यबोध के वस्तुगत और रूपगत स्वरूप को प्रभावित किया है। इसकी परिणति हमें नवगीत के उद्भव और विकास में भी देखने को मिल रही है। फिर भी कुछ लोग नवगीत की रचनात्मक उपलब्धियों को नकारने की साजिश कर रहे हैं। इस साजिश में आधुनिकतावादी गद्यकविता के समीक्षक और गद्यकवि ही नहीं, बल्कि यथास्थितिवादी सोचवाले गीतकार भी शामिल हैं।

यदि हम ध्यान से देखें, तो हम पाएँगे कि हिन्दी कविता की

आलोचना में एक विचित्र प्रकार की अलगाववादी और अवसरवादी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आधुनिकतावादी रूपवादी और कलावादी आलोचना छायावादकालीन गीतकारों प्रसाद, पन्त, निराला, महोदवी के गीतों को अपनी आलोचना में सहर्ष शामिल कर लेते हैं; किन्तु साठोत्तरी गीतकाव्य और नवगीत को हिन्दी कविता के समग्र मूल्यांकन में शमिल न करने में भी उनके एक साजिश का ही आभास मिलता है। ऐसी स्थिति में यथास्थितिवादी सोच के कुछ कवि कहते हैं कि यह सब चलता है। हम क्या कर सकते हैं? हिन्दी कविता की आलोचना की यथास्थितिवादी सोच पर टिप्पणी करते हुए रामविलास शर्मा ने एक जगह लिखा है कि ''आचार्य शुक्ल ने हिन्दी आलोचना को एक बड़ी दार्शनिक सैद्धान्तिक जमीन दी थी। वे हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी थे; किन्तु आलोचकों ने उनके महत्त्व को आँकने में सदैव अवसरवाद और संकीर्णता का परिचय दिया है। कुछ शिक्षण संस्थान के हिन्दी–विभाग के विद्वानों ने भी आचार्य शुक्ल के साथ न्याय नहीं किया और अपने विद्यार्थियों को आचार्य शुक्ल के चिन्तन की मौलिक यथार्थवादी विशेषताओं से दूर रखा। हिन्दी–विभागों में हर साहित्यकार के साथ यही सलूक होता आ रहा है। हिन्दी के अध्यापक हिन्दी कविता का सिर्फ छिलका विद्यार्थियों को थमाते हैं और अन्तर्वस्तु का सारतत्व विस्मृति के अंधेरे में छिपाये रखते हैं।'' ('आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना')

'नवगीत के नये प्रतिमान' के अनुसार 'प्रतिमान एक' में 'नवगीत की आलोचना और उसका प्रासंगिक सौन्दर्यबोध' के माध्यम से यह कहा गया है कि चूँकि नवगीत ने साठोत्तरी गीतकाव्य की अर्न्तवस्तु में प्रयुक्त समष्टिवादी यथार्थवाद को ही गीतकाव्य का आधार बनाया है। इसलिए उसकी आलोचना परम्परावादी और रूपवादी आलोचना के पुराने औजारों से नहीं होनी चाहिए, अन्यथा नवगीत के साथ सर्वथा अन्याय होने की सम्भावना है। वर्तमान समय में हमें नवगीत की सम्यक् आलोचना के लिए पश्चात् विद्वानों द्वारा कविता के लिए प्रयुक्त वैश्विक सौन्दर्यबोध को समझना और उस पर अमल करना बहुत जरूरी है। वैश्विक सौन्दर्यबोध की मान्यता है कि मालिक और मजदूर को संवेदनायें एक नहीं हो सकती; क्योंकि मजदूर उत्पादक होता है और मालिक उत्पादन का भोक्ता होता है। मजदूर श्रम करनेवाला होता है, तो मालिक मजदूर के उत्पादन का आनन्द लेनेवाला होता है। इसलिए दोनों की अनुभूतियाँ एक नहीं हो सकतीं। इसलिए यदि संघर्ष करनेवाले मजदूर की कविता धीरे–धीरे मूर्त होती जाती है, तो मालिक की कविता धीरे–धीरे अमूर्त होती जाती है। इस आधार पर मजदूर को शोषित कहा जाता है और मालिक को शोषक। इसका परिणाम यह हुआ है कि मालिक दिन–प्रतिदिन अमीर होता जा रहा है और मजदूर दिन–प्रतिदिन गरीब होता जा रहा है।

आलोचना के पश्चिम के वस्तुवादी विचारक 'ऐंगल' का कहना है कि 'साहित्य का वस्तुत: यदि क्या, क्यों और किसके लिए' प्रश्नों के जवाब की खोज का परिणाम है, तो यह साहित्य को 'जनप्रिय और यथार्थवादी' दोनों बनायेगा और अगर इससे भिन्न हुआ, तो वह निरन्तर अमूर्त होता जायेगा। वस्तुत: 'वस्तुसत्य' साहित्य में 'मनुष्य के मनुष्य होने का प्रमाण है।'

इसीलिए नवगीत अपनी रचनाधर्मिता में मनुष्य के मनुष्य होने का प्रमाण है और इस प्रमाण को कसौटी रूप में स्वीकार किया है। इसलिए नवगीत को इस प्रमाण और लक्ष्य तक पहुँचने में समाज की असंगतियाँ, विद्रूपताएँ, अराजकता, शोषण, उत्पीड़न बाधक के रूप में मार्ग में उपस्थित हो जाते हैं। साथ ही वे आधुनिकतावादी कवि और समीक्षक भी नवगीत से सदैव एक दूरी बनाकर चलते हैं तथा कभी–कभी बाधा भी उत्पन्न करते हैं।

नवगीत का योगदान : आज हम वैश्वीकरण के एक ऐसे युग में जी रहे हैं, जब हमारी सांस्कृतिक चेतना की वाहक सभी ललित कलाएँ और साहित्यिक विधाएँ या तो गौण हो गई हैं या हाशिए पर चली गई हैं और केन्द्र में सत्ताकामी अराजक ताकतों का बोलवाला बढ़ता जा रहा है। आज की उपभोक्तावादी सभ्यता की चमक–दमक के आगे, तो कविता, कहानी का भी अब कोई पाठक नहीं है? किन्तु सांस्कृतिक चेतना के मूलभूत सिद्धान्त बताते हैं कि सामाजिक रहन–सहन और रीति–रिवाज चाहे जितना बदल जायें, मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियाँ अचेतन में सदैव विद्यमान रहती हैं। गीत–कविता भी आदिम प्रवृतियों का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है। गीत भी मनुष्य की रागात्मक और लयात्मक अनुभूतियों के प्रक्षेपण और अनुगूंज की प्रतीति है। इसकी अभिव्यक्ति के रूपाकार तो बदल सकते हैं; किन्तु इसकी प्रवृत्यात्मक प्रभावान्विति की अनुगूंज मनुष्य हमेशा महसूसता रहता है। छायावादकालीन और साठोत्तरी गीतकाव्य तथा नवगीत भी इसी बदलाव की प्रविधियाँ हैं। इसी गीतकाव्य को विद्यमानता का सातत्य हम लोकचेतना में वाल्मीकि से लेकर कबीर–मीरा से होते हुए निराला, प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा से होते हुए आज की छांदस कविता नवगीत में भी हम महसूस करते आ रहे हैं।

किन्तु 1960 के बाद गीतों में एक विशेष यथार्थवादी परिवर्तन देखने को मिलता है। आजादी के बाद भारतीयों में एक नैराश्य की भावना देखने को मिलती है। देशवासियों ने आजादी के बाद जो सपने संजोये थे, वे सब धूल–धूसरित हो गए। आजादी के बाद भी आम आदमी का शोषण और उत्पीड़न बंद नहीं हुआ। पहले गरीब किसान, मजदूरों के साथ गोरे अंग्रेज शासक अत्याचार कर रहे थे। अब आजादी के बाद हमारे ही देश के सामंत जमींदारों ने उनकी जगह ले ली और नेता मंत्री बनकर देश को लूटने लगे। छायावादोत्तरकालीन गीतों की विशेषता यह है कि उसमें व्यष्टिवादी सोच के बजाय समष्टिवादी अवधारणा को महत्त्व दिया गया है और देश की आम जनता के दुख दर्द को विषय बनाया गया है। इसी को हम 'साठोत्तरी गीतकाव्य' के नाम से जानते हैं।

छायावादोत्तरकालीन गीतकाव्य में हरिवंशराय बच्चन और गोपालदास नीरज एक शीर्षस्थ गीतकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। बच्चन का चर्चित गीत संग्रह 'निशा निमंत्रण' के माध्यम से हमें आधुनिक गीतकाव्य का विकास भी देखने को मिलता है, जिसमें सजनी साजन के बजाय 'साथी' शब्द का प्रयोग किया गया है। साठोत्तरी गीतकाव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान और पहचान यही है कि छायावाद के व्यष्टिवादी दृष्टिकोण के बजाय निराला ने समष्टिवादी यथार्थवाद को गीतकाव्य की अर्न्तवस्तु में आत्मसात् करना प्रारम्भ कर दिया था। इन गीतों में नई भाषा, मुहावरे, शिल्प, छंद और अन्तर्वस्तु में मानवीय संवेदना का विशेष आग्रह देखने को मिलता है। वैचारिक रूप से जागरूक कुछ गीतकारों ने लोकोन्मुखी यथार्थवादी काव्य चेतना का स्वरूप प्रदान करके गीतकाव्य का एक नया स्वरूप और नाम दिया, जिसे हम 'नवगीत' के नाम से जानते हैं। नवगीत को प्रतिष्ठित करने में कई सामूहिक गीत संग्रहों का विशेष योगदान है।

कहते हैं–1958 में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' शीर्षक गीत संग्रह प्रकाशित किया और इसके सम्पादकीय में उन्होंने गीत को 'नवगीत' का नाम देने का प्रस्ताव किया और उसके यथार्थवादी स्वरूप को परिभाषित भी किया। डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने भी 1986 में प्रकाशित 'नवगीत अर्धशती' के सम्पादकीय में उल्लेख किया है कि उन्होंने सर्वप्रथम 1958 में 'परिमल' की एक गोष्ठी में 'पुरवैया धीरे बहो' गीत को 'नवगीत' के नाम से प्रस्तुत किया था। 'नवगीत' के नामकरण के इस विवाद को हम यहीं छोड़ देते

हैं और नवगीत की नदी में कितना जीवनदायक गंगाजल प्रवाहित हो गया? इस पर हम ध्यान दें, तो ज्यादा उपयोगी होगा।

यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने 1986 में 'नवगीत अर्धशती' प्रकाशित करके अस्सी नवगीतकारों को चर्चित कराने का काम किया; किन्तु उसी के साथ यह भी एक सच्चाई है कि डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने अपने नवगीत दशक 1,2,3 में ऐसे गीतकारों को महत्व दिया जिन्होंने अपने गीतों में कलावादी शिल्प और अमूर्त बिम्बों का प्रयोग किया है। इसलिए नवगीत दशक 1,2,3 अचर्चित ही रह गये। इसलिए न उनका कोई बाजार है और न कोई पाठक है। डॉ. शम्भूनाथ ने अपनी वैचारिक संकीर्णता के कारण अपने किसी नवगीत संग्रह में रमेश रंजक को शामिल नहीं किया था। इस प्रकार उनका यह व्यवहार उनकी हठवादिता का परिचय देता है। नवगीत अर्धशती में कई यथार्थवादी दूसरे नवगीतकार शामिल हैं। कौशलेन्द्रप्रताप सिंह के गीत 'चारो ओर जहर' की पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

''घायल होकर लटका दिन पर्वत की शूली पर
अंधियारे में देह समेटे तक्षक के बेटे,
फन फैला फुफकार रहे हैं इधर–उधर लेटे,
धीरे–धीरे फैल रहा है चारों ओर जहर।''

('नवगीत अर्धशती' पृष्ठ 89)

इस सामंती प्रजातंत्र में भ्रष्ट नेता और अफसर 'तक्षक के बेटे हैं' इनसे जनता को कौन बचाएगा? इस प्रकार 'नवगीत अर्धशती' ने नवगीत के यथार्थवादी तेवर से भी परिचित कराया है; किन्तु वहीं यह ऐतिहासिक सत्य भी जानना जरूरी है कि 'समग्र चेतना' ने अपना प्रवेशांक 'नवगीत जनमानस के आईने में', (संपादक–राधेश्याम बंधु) नवगीत विशेषांक के रूप में 1980 में प्रकाशित किया था। इसमें रमेश रंजक की रचनाधर्मिता को केन्द्र में रखकर नवगीत की सामाजिक सरोकारों वाली जनपक्षीय भूमिका से साहित्य जगत् को परिचित कराया गया है। इसी प्रकार 'समग्र चेतना' ने दो और महत्त्वपूर्ण सामूहिक नवगीत संग्रह (1), नवगीत और उसका युगबोध (2004) (2) 'नवगीत के नये प्रतिमान' (सं. राधेश्याम बन्धु–2012) भी प्रकाशित किए हैं। इसमें डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ के आलेखों ने नवगीत के प्रतिमानों को जहाँ चिह्नित करने का काम किया, वहीं लगभग 150 नवगीतकारों को यथार्थवादी रचनाओं को नवगीत की यथार्थवादी उपलब्धियों के साक्ष्य के रूप में भी प्रस्तुत किया है। डॉ. नामवर सिंह ने अपने आलेख में कहा है–''चूँकि नवगीत ने जनभावना और जनसमस्याओं को अपनी अन्तर्वस्तु के रूप में स्वीकार किया है, इसलिए यह जनसंवाद–धर्मिता की कसौटी पर खरा उतर सका है। समय की चुनौती के अनुसार यदि गीत की अन्तर्वस्तु बदलती है, तो उसका 'सुर' और 'कहन' की भंगिमा भी बदलती है। नवगीत इसी बदलाव का सुपरिणाम है।'' ('नवगीत के नए प्रतिमान' पृष्ठ 107)।

'समग्र चेतना' का आगामी सामूहिक नवगीत विशेषांक 'नवगीत का लोकधर्मी सौन्दर्यबोध' (संपादक–राधेश्याम बंधु) प्रकाशित हो गया है। इसमें 'नवगीत के नये प्रतिमान' में जो बारह प्रतिमान प्रस्तुत किए गए हैं, उनकी इसमें सप्रमाण व्याख्या भी की गयी है और विद्वानों के अभिमत के साथ चुने हुए नवगीतकारों के नवगीत साक्ष्य के रूप में भी दिए जा रहे हैं। हमें इस अवसर पर यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि 'समग्र चेतना' के माध्यम से नवगीत की जनपक्षीय रचनाधर्मिता को प्रतिष्ठित करने का जो हमने लक्ष्य बनाया था, उसको सही अंजाम तक पहुँचाने में हमें समीक्षक सहयोगियों और विद्वानों का पूरा सहयोग मिला है।

यदि रचनात्मक कार्य का दायरा और फलक बड़ा हो, तो एक–दो असंगतियों, दुराग्रह की अड़चनों से कोई काम रुकता नहीं है। नवगीत का यह यथार्थवादी आन्दोलन 'समग्र चेतना' के प्रयास से 1980 से लगातार जारी है और कभी रुका नहीं तथा न आगे भी रुकेगा। हम इस विश्वास को लेकर चलते हैं कि 'कला, कला के लिए' नहीं, बल्कि 'कला जीवन के लिए है'; किन्तु कलावादी सोच वाले बुर्जुआ कलाकर–गीतकार नवगीत की टाँग भी खींचने की कोशिश करते हैं।

नवगीत और नवगीतकारों के सामने भी यह विषमता का सवाल विद्यमान है। इसलिए नवगीत शुरू से ही आम आदमी की संघर्षशीलता के साथ है। पता नहीं क्यों 'नवगीत के नये प्रतिमान' द्वारा प्रस्तावित 'नवगीत की वर्गीय चेतना' के मुद्दे के कारण कुछ यथास्थितिवादी सोचवाले कवि, गीतकार, समीक्षक, हिन्दी कविता के विद्वान विचलित हो उठे हैं? नवगीत की तरफ से यह कोई नया सवाल रचनाकरों के सामने नहीं आया है। निराला ने भी समष्टिवादी यथार्थवाद के माध्यम से गरीब किसान, मजदूर, आम आदमी के दु:ख–दर्द की वकालत की थी और नवगीत की 'वर्गीय चेतना' में भी उसी शोषित वर्ग की पक्षधरता की बात की गयी है। इसमें हर गरीब आदमी को अस्मिता का सवाल छिपा है। यदि गीत, कविता मानवतावाद की पक्षधर हैं, तो कवियों को वर्गीय चेतना की चुनौती से भागना नहीं चाहिए। फिर गीत या नवगीत इंसानियत को अस्मिता के सवाल से अलग कैसे रह सकते हैं?

साठोत्तरी गीतकाव्य की अंतर्वस्तु में जिस मानवीय और सामाजिक सरोकारों को यथार्थवाद के रूप में प्रमुखता दी गई है, उसी का पोषण कबीर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान ने भी किया और सप्तकेतर कवियों में रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, त्रिलोचन ने भी जनपक्षीय यथार्थवादी गीत लिखे हैं। इस कालावधि में हिन्दी कविता में प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का वर्चस्व था, जिसका प्रभाव नवगीत पर भी देखने को मिलता है।

कुछ नवगीत संग्रहों ने अपनी नई भाव–भंगिमावाले गीतों के माध्यम से काव्यप्रेमियों को प्रभावित किया, जैसे 'मेंहदी और महावर' (उमाकान्त मालवीय), 'गीत विहग उतरा', 'इतिहास दुबारा लिखो' (रमेश रंजक), 'रंग मैले नहीं होंगे' (नचिकेता), 'मौसम हुआ कबीर' (शांति सुमन), 'हरियल पांखी धान' (विद्यानन्दन राजीव), 'सभाध्यक्ष हँस रहा है' (सत्यनारायण), 'नदियाँ क्यों चुप हैं?' (राधेश्याम बंधु), 'लिख सकें तो' (नईम) आदि। ये नवगीत संग्रह नवगीत के ऐसे साक्ष्य हैं, जो भाषा की नवीन भावभंगिमा और अन्तर्वस्तु की समसामयिकता से सुधी पाठकों का ध्यान भी आकृष्ट करते हैं और सोचने के लिए बाध्य भी करते हैं।

कैलाश गौतम का गीत है–'फाटक भी टूटेगा'। इसमें अवाम के दु:ख–दर्द, गरीबी, बेचारगी का बड़ा व्यंजनापरक चित्रण किया गया है। पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

''पनप रहा विद्रोह सहज, स्वाभाविक मुद्रा में
नहीं बँधेगा बुद्ध हमारा, पोथी पत्रा में
कड़ियाँ टूट रहीं कैदी की, फाटक भी टूटेगा
पर–उपदेश कुशल बहुतेरे, जैसा भांडा फूटेगा,
कब तक पड़ा रहेगा बोलो, हीरा कचरा में?''

('नवगीत और उसका युगबोध', पृष्ठ 233)

नवगीत की इन पंक्तियों में गरीब आदमी की गरीबी, भुखमरी, निरीहता की छटपटाहट का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। हम आम आदमी की पीड़ा का निदान सिर्फ उपदेश के सहारे नहीं कर सकते। जब गरीब का धैर्य टूटता है, तो उसका विद्रोही क्रोध सत्ता का फाटक भी तोड़ने के लिए बाध्य हो जाता है। डॉ. अनिल कुमार के गीत 'धूप के दिन' में भी आज की असंगतियों से जूझते दिन का चित्रण भी आजादी के बाद के नैराश्य को प्रकट करने का प्रयास करता है। पंक्तियाँ देखें–

''मुश्किलों के दौर से उबरे नहीं हैं
नित सबेरे पर, घिरा रहता अंधेरा
साँझ में भी धुआँ का, रहता बसेरा,
कमलवन के दिन अभी सुधरे नहीं हैं।
('नवगीत के नये प्रतिमान', पृष्ठ 333)

आजादी के 70 वर्ष गुजर जाने के बाद भी 'मुश्किलों' के दौर से हम उबरे नहीं हैं। हम कैसे मान लें कि आजादी के अच्छे दिन आ गए।

कविता

अधूरा साया

डॉ. ज्ञानी चोर
रघुनाथगढ़, सीकर (राजस्थान)
मो.–9001321438

विचलित हूँ मैं
मन के कोने खाली हैं
छिपती लाली का प्रकाश
सदा अंधेरा कर जाता
बुझती तो दीपक की
सदा गहन उदासी दे जाती

लुप्त चेतना तोड़ रही है
मोह से मुख मोड़ रही है
व्याकुलता मन में तड़प रही
कर्मपथ धिक्कार रहा है
उर में मची उथल–पुथल से

मौन निमंत्रण महाकाल को
दबे रह जाना क्या नियति चक्र
भाग्यकोष में घुटन भरी है
जीवन की मधुरता खोने को

करवट बदली रातों ने तो
दिवस भोर प्रभा की लाली
अदृष्य कर्मचक्र कालचक्र
लिपटा भाग्यकोष गुहा में
अश्रुबिंदु अटके पलकों में
निष्क्रिय चेतना की चेतावनी
करती आहूत महाकाल को

दिग्भ्रम है जीवन सत्य
संकट छाया साँसों पर
सुलभ निज बाल चपलता
जिस पर सर्वस्व स्वत्व है
दुर्लभ बन गय कलरव

प्रण प्राणप्रिये प्रणय प्रण
अधूरेपन का अहसास
नीरस राग अलाप
दुष्चरित्र में लिपटा हूँ
जीवन की रंगशाला में
किरदार अधूरा है प्रिये
वंचित सुख स्वप्न
साकार नहीं सका कर मैं
क्षम्या क्षम्या क्षम्या क्षम्या

एक अधूरा साया हूँ
जीवन का भरमाया हूँ
सृष्टि का सरसाया हूँ
कब किस जीवन लहर को
भरपूर रूप में भाया हूँ
वासना का उज्ज्वल कलंक
शेष बचा अपकीर्ति पंक
टूट गई अभिमान की लंक
नवजीवन की नष्ट कंक
क्षम्या क्षम्या क्षम्या क्षम्या।

ग़ज़लें :

डॉ. नवीन माथुर पांचोली
अमझेरा, धार (म.प्र.), मो. 9893119724

1
बोल के मोल में झूठा निकला
कौन इस हाल में सच्चा निकला
कायदा किस तरह निभाएगा
फलसफा इश्क़ का क़िस्सा निकला
जो थकानों की नींद देखा था
वो खुली आँख का सपना निकला
घूँट भर तिश्रगी बुझा देगा
रेत के बीच जो दरिया निकला
होशियारी बहुत जताई पर
मुश्क़िलों में वही टूटा निकला
है ज़रूरत मगर नहीं लेंगे
हाट–बाजार सब महँगा निकला।

2
रोज़ आसाँ सफ़र नहीं लगता
हर दुआ में असर नहीं लगता
मुश्क़िलों से निज़ात पालें पर
रास्ता मुख़्तसर नहीं लगता
हम बता दें उसे सब राज़ मगर
शख़्श वो मोतबर नहीं लगता
हैं हर एक हाथ में ख़बर सारी
कोई अब बेख़बर नहीं लगता
पेट भरना है जिसमें मजबूरी
काम ऐसा बसर नहीं लगता
रात के बीतने में दिन जैसा
कोई ठहरा पहर नहीं लगता
भीड़ के साथ लाख में कोई
एक जैसा मग़र नहीं लगता।

3
हटाकर फिर ठिकाने पर रखा जाता है
मुझे ही क्यों निशाने पर रखा जाता है
गली से दूर इतना जब मक़ाँ है अपना
इशारा क्यों मुहाने पर रखा जाता है
तुम्हें मेरी जरूरत ही नहीं है जब तो
मुझे फिर क्यों सिरहाने पर रखा जाता है
घुमाना–घूमना ही जब तुम्हारी आदत है
पता नहीं क्यों आशियाने पर रखा जाता है
अगर उतने तुम्हारे हाथ में ख़र्चे नहीं हैं
तकाज़ा क्यों ख़ज़ाने पर रखा जाता है।

4
जब लफ़्ज़ों के भाव सफल हो जाते हैं
लोगों के जज़्बात सज़ल हो जाते हैं
जिनके सिर पर हाथ हो ऊपरवालों का
उनके सारे काम अमल हो जाते हैं
साथ निभाते हैं आपस में जब सच्चा
चलकर रिश्ते और सबल हो जाते हैं
अक्सर जिनसे दिल बहलाया है हमने,
काम वही इक़ रोज़ शग़ल हो जाते हैं
कुदरत ने इक़ सीख जताई कीचड़ से
खिलकर इसमें फूल कँवल हो जाते हैं
ऊँचे–नीचे, सच्चे–झूठे मसलों पर
लिखते–लिखते शेर ग़ज़ल हो जाते हैं।

आलेख

रचना में सत्य का प्रसारण

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, चंडीगढ़
मो. 9876301085

इस सच्चाई को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि आज के इस बदलते ग्लोबव्यापी परिदृश्य में जो भी रचनाकार असत्य एवं अज्ञानत्ता का मुकाबला करते हुए सत्य एवं यथार्थ अभिव्यक्त करना चाहता है, उसे कतिपय कठिनाइयों, बाधाओं और चुनौतियों को पराभूत करना बेहद जरूरी है। यहाँ कहने का सीधा प्रयोजन यह है कि सच्चे एवं प्रतिबद्ध रचनाकार में सत्य उद्घाटित करने का जबर्दस्त साहस होना चाहिए। यद्यपि इसे हर जगह गुप्त रखा जाता है, उसमें सत्य को एक कारगर हथियार की तरह इस्तेमाल करने की निपुणता होनी चाहिए। यद्यपि इसे परिवेश दबाकर रखता है, उसमें यह चयन करने की निर्णय शक्ति भी होनी चाहिए कि सत्य किन लोगों के हाथों में सुरक्षित एवं प्रभावी रह सकता है, यद्यपि इसकी टकराहट कई चीजों से होती है। यूँ तो ये समस्याएँ फासीवाद के प्रभावाधीन रहनेवाले लेखकों के सामने अधिक आती हैं; लेकिन साम्प्रदायिक प्रदेशों एवं परिवेशों, जहाँ अभिव्यक्ति कि स्वतंत्रता पर कड़ा पहरा रहता है, में साहित्यरत कलमकार भी इनसे बच नहीं सकते। विश्व साहित्य एवं भारतीय साहित्य की उन तमाम प्रतिबंधित रचनाओं तथा सलमानरुशदी, तसलीमा नसरीन आदि रचनाकारों के विरुद्ध जारी किए गए फतवों का इतिहास हमसे अभी दूर नहीं गया है।

इसमें विवाद की कोई गुंजाइश नहीं कि लेखक को अपनी रचनाओं में सत्य को छिपाना नहीं चाहिए और जान–बूझकर असत्य भी नहीं लिखना चाहिए। वह न तो शक्तिशाली लोगों के सामने झुके और सिकुड़े तथा न ही निर्बलों को धोखा दे। विमर्श–निष्कर्ष गवाह हैं कि सबलों के आगे न झुकना कोई सरल कार्य नहीं है और निर्बलों को धोखा देना, कोई बहुत फायदे की बात भी नहीं है। दमन एवं अत्याचार के समय को कोई भी सच्चा रचनाकार नजरअंदाज नहीं कर सकता। 'सोजे वतन' की जब्ती पर हमीरपुर के तत्कालीन कलेक्टर ने प्रेमचंद को धमकाते हुए कहा था–''प्रेमचंद, इसे अपना सौभाग्य समझो कि तुम अंग्रेजी शासन की प्रजा हो। यदि यह मुगल काल होता, तो तुम्हारे दोनों हाथ कटवा दिए जाते।'' इस धमकी ने प्रेमचंद को सत्य उद्घाटित करने के लिए अधिक ताकतवर एवं निडर बना दिया। वे आदर्शोन्मुखी यथार्थ से आगे बढ़कर परिशुद्ध यथार्थ के शिखरों को छूते गए।

जाहिर है कि श्रमिकों के शोषण, सामाजिक अन्याय, भूख, अज्ञानता, युद्ध आदि के बारे में लिखने के लिए साहस चाहिए; क्योंकि ये अस्वस्थ चीजें समाज में विकृतियों को जन्म देती हैं। स्वयं की भूलों, पराजयों एवं असफलताओं का सच्चा ब्योरा देने के लिए भी साहस चाहिए। जैविक धरातल पर देखा जाए, तो उत्पीड़न स्वयं में बहुत बड़ा अन्याय है। उत्पीड़क पुष्ट होते हैं; क्योंकि वे उत्पीड़न देते हैं। अपनी अच्छाई अथवा परोपकारिता को हर युग में हराया एवं कुचला जाता रहा है। ईसा मसीह, सुकरात, गैलेलियो, जॉन मिल्टन, चार्ल्स डिकन्स एवं ऐलिजाबेथ बैरेट बाऊनिंग के सत्य को भी तत्कालीन सरकारें बर्दाश्त नहीं कर सकी थीं। नाइजीरिया के प्रख्यात साहित्यकार, पर्यावरणविद् एवं मानवाधिकार के हिमायती केन सारो वीवा को नाइजीरिया सैनिक शासन ने फाँसी पर लटका दिया। सारो वीवा पर आरोप लगाया गया कि उसने अपनी रचनाओं एवं वक्तव्यों के जरिए शेल कंपनी तथा नाइजीरिया फौजी शासन के खिलाफ अपनी विद्रोहात्मक आवाज बुलंद की थी। फाँसी पर झूलने से पहले सारो वीवा के आखिरी शब्द थे–''मैं नहीं रहूँगा, मेरे विचार रहेंगे, संघर्ष जारी रहेगा।'' साफ है कि रचनाकार का साहस सत्य को उजागर करने में है, परिस्थितियों से समझौते करने में नहीं; लेकिन साहित्यिक सत्य अक्खड़ एवं संदिग्ध भी नहीं होना चाहिए। मिथ्यावादिता से संघर्ष करते हुए ही रचनाकार सत्य को उद्घाटित कर सकता है। जब किसी रचना के बारे में कहा जाता है–''इस रचना में सत्य का उद्घाटन है'', तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उस रचना में कोई व्यावहारिक, तथ्यपरक, अकाट्य एवं मतलब की बात कही गई है।

सत्य लिखना इसलिए भी मुश्किल है; क्योंकि हर जगह इसे दबाया जाता है; लेकिन निर्भीक एवं सच्चा साहित्यकार दमन के सामने कभी आत्म–समर्पण नहीं करता। जॉन मिल्टन ने 'एरेपेगिटिका' में व्यक्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विषयक तीखी एवं बेबाक टिप्पणी से सामाजिक एवं राजनीतिक हलकों में थर्राहट पैदा कर दी थी। आश्चर्य नहीं कि आगे चलकर मिल्टन का यही 'एरेपेगिटिका' उसके महान् महाकाव्य 'पैराडाइज लॉस्ट' की अग्रगामी विषय–वस्तु बना। टॉमस हार्डी ने 'टेस ऑफ द डि उरवरबिले' उपन्यास की नायिका टेस के माध्यम से विक्टोरिया की तथाकथित सेक्स नैतिकता के ढोंग को तार–तार कर दिया था। उनके 'ज्यूड द ऑब्सक्योर' उपन्यास के सत्य को सरगर्म वाद–विवादों के आक्रमण झेलने पड़े थे। जेम्स जॉयस के उपन्यास 'यूलिसेस' को भी प्रकाशन के समय कटु विरोध का सामना करना पड़ा था। स्पष्ट है कि टॉमस हार्डी और जेम्स जॉयस का सत्य बहुतेरों को सहन नहीं था। टी.एस. इलियट ने तो 'यूलि सेस' उपन्यास को आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना घोषित करते हुए अपने 'द ईगोइस्ट' लंबे लेख में अमेरिका की सेंसरशिप पर तीखी टिप्पणी की थी। एक गंभीर कलाकार एवं साहित्यकार के लिए मानवीय अनुभव के सभी क्षेत्र वैध विषय हो सकते हैं, यह सच्चाई डी.एच. लारेन्स ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'लेडी चेटरलीज लवर' में व्यक्त की थी। प्रकाशन के बाद इस उपन्यास को प्रतिबंधित कर दिया गया था; लेकिन बाद में सत्य की विजय हुई और इसे संरक्षण मिला।

इसी प्रखर संदर्भ में डॉ. यश गुलाटी के शब्द उधार लेकर कहें, तो लोकमान्य तिलक की 'शिवाजी के उद्गार', वीर सावरकर की 'भारतीय स्वतंत्रता समर', प्रेमचंद की 'सोजे वतन', अक्सीर स्यालकोटी की 'स्वराज्य की गूंज', चाकर की 'बिजली', पाण्डेय हीरालाल व्यग्र की 'व्यग्र बम बोले', प्रभुनारायण मिश्र की 'आजाद भारतवर्ष', द्वारका प्रसाद की 'असहयोग फाग', लक्ष्मीचन्द्र की 'भारतमाता की पुकार', रसिक की 'खून के छीटें', अभिराम शर्मा की 'मुक्त संगीत', प्रहलाद पाण्डेय शशि की 'तूफान' एवं 'विद्रोहिणी' रचनाओं में व्यक्त सत्य जब ब्रिटिश शासन को सहन नहीं हुआ, तो इन समूची रचनाओं को प्रतिबंधित कर दिया गया। लोकमान्य तिलक को तो 14 सितंबर, 1896 को डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा सुना दी गई। उल्लेखनीय है कि भारत में तिलक की 'शिवाजी के उद्गार' कविता के प्रकाशन पर मिलने वाली यह पहली सजा थी; लेकिन यह भी प्रमाणित है कि रचना में सत्य का प्रसारण पाठकों एवं जन–सामान्य को आकृष्ट करता है, एक वैचारिक जनमत तैयार करता है और रचनाकार भी चर्चित होता है। सलमानरुशदी 'सेटेनिक वर्सेज' (1988) एवं तसलीमा नसरीन 'लज्जा' (1993) के प्रकाशनोपरान्त ही चर्चा में आए। रूस में सोल्जेनित्शान को उनकी सत्य रचनाधर्मिता के लिए देश निकाला दिया गया। एलेग्जेंडर कुमरीन के गुलाब द्वीप समूह पर आधारित लिखे गए उपन्यास में प्रतिपादित सत्य भी रूसी शासन को असहनीय था, जबकि इस उपन्यास में ज्यादातर आँकड़े ही हैं। आज भी चीन, बल्गारिया एवं दक्षिण अफ्रीकी देशों में राजनीतिक कट्टरवाद के कारण साहित्यिक कृत्तियों में व्यक्त सत्य बर्दाश्त नहीं होता।

लेकिन यह भी सही है कि सत्य को न तो इतनी आसानी से दरगुजर

किया जा सकता है और न ही इसे सरलता से सुनिश्चित किया जा सकता है। दुनिया के सामने एक के बाद एक सभ्यतम राष्ट्र बर्बरता में जा गिरे। आज हर कोई जानता है कि रसायनिक युद्ध कभी भी इस हँसती, गाती, खेलती दुनिया को विनाश के खंडहरों में बदल सकता है। यह सत्य है और यदि यही सत्य किसी रचना में उद्घाटित होता है, तो इसे उसी प्रकार स्वीकार करना चाहिए, जिस प्रकार हम इस सत्य को स्वीकृति प्रदान करते हैं कि कुर्सियों की सीटें होती हैं और बारिश ऊपर से नीचे की ओर ही गिरती है। कई रचनाकार इसी प्रकार का सत्य ही लिखते हैं। उनका विवेक स्पष्ट होता है और सबल उन्हें भ्रष्ट नहीं कर सकते हैं। कुर्सी को कुर्सी कहना सत्य है, बारिश को नीचे गिरने से कोई रोक नहीं सकता, शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलंद होती रहेगी, अत्याचार एवं वर्जनाओं के खिलाफ इस्पाती सत्य स्वरित होता रहेगा। यह भी सत्य है।

यह कहना भी निराधार नहीं है कि गरीबी के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले और शासकों की परवाह न करनेवाले भी कई बार सत्य से दूर रहते हैं। दरअसल, उनमें सत्य जानने के ज्ञान का अभाव रहता है और वे पुराने अंधविश्वासों में फँसे रहते हैं एवं कुख्यात पूर्वग्रहों से संचालित रहते हैं। उनके लिए संसार इसलिए जटिल है; क्योंकि वे तथ्यों से अनभिज्ञ होते हैं। नतीजतन वे मानवीय संबंधों को समझ नहीं सकते। इसीलिए आज के इस जटिल एवं त्वरित बदलते युग में प्रत्येक लेखक को अर्थव्यवस्था एवं इतिहास की भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता का ज्ञान होना जरूरी है। कहने का प्रयोजन यह है कि यदि सत्य को खोजने एवं साहित्य में इसे संप्रेषित करने की प्रविधि सही है, तो हर प्रकार के सत्य को खोजा एवं प्रसारित किया जा सकता है। गैलेलियो, कार्ल मार्क्स, आईन्स्टीन, खलील ज़िब्रान और गाँधी के सत्य को जितना दबाया गया, उतना ही वह ज्यादा फैला। इसका कारण यह रहा कि इनका सत्य परिणामोन्मुख था तथा इसमें हानिप्रद स्थितियों के निवारण के उपायों की पहचान थी।

साहित्यकार में इस बात की भी निर्णय शक्ति होनी चाहिए कि उसकी रचनाओं का सत्य किन लोगों के हाथों में प्रभावी रह सकता है। ऐलिजाबेथ बैरेट ब्राऊनिंग की कविता 'द कराई ऑफ चिल्ड्रन' ने रानी विक्टोरिया को अन्दर तक पिघला दिया था और नतीजे के तौर पर काले धुएँवाली फैक्टरियों में कम आयु के काम करनेवाले बच्चों को शोषण से मुक्ति मिली। साफ है कि संदर्भित कविता में अभिव्यक्त सत्य एक विशिष्ट उद्देश्य एवं विशिष्ट बच्चों के लिए था। मत भूलिए कि अच्छी चीजें सुनने में भी अच्छी लगती हैं, अतः इन अच्छी चीजों को सुनना चाहिए। सत्य भी विवेकशीलता से बोला जाना चाहिए, सुना जाना चाहिए और लिखा भी जाना चाहिए। इस संदर्भ में एलेग्जेंडर पोप की 'द रेप ऑफ द लॉक', जोनाथन स्विफ्ट की 'द बैटल ऑफ बुक्स', टी. एस. इलियट की 'द वेस्ट लैंड' एवं निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' एवं 'कुकुरमुत्ता' रचनाओं में शंखनादित सत्य को देखा जा सकता है।

विश्व इतिहास इस बात का गवाह है कि जहाँ सत्य को दबाने या छुपाने का प्रयास किया गया है, वहाँ सत्य को चतुराई एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रसारित किया गया है। कन्फ्यूशियस ने पुराने, देशभक्तिपूर्ण ऐतिहासिक पंचांग का अयथार्थ रूप प्रस्तुत किया। उसने कुछ विशिष्ट शब्दों को बदल दिया। पंचांग में लिखा है–'हूण शासक ने 'वान' नामक दार्शनिक को मार दिया; क्योंकि उसने कुछ गलत कहा था; लेकिन कन्फ्यूशियस ने 'मार दिया गया' शब्दों की जगह 'हत्या की गई' लिख दिया। इस प्रकार तत्कालीन तानाशाही एवं उसके तले एवजी को दी गई फाँसी के संदर्भ में कन्फ्यूशियस ने इतिहास की नई व्याख्या का मार्ग खोल दिया। जहाँ अत्याचार या दमन फैला हुआ हो, तो ऐसे परिवेश में 'आज्ञाकारिता' शब्द का प्रयोग उचित है न कि 'अनुशासन', क्योंकि अनुशासन स्वयं द्वारा नियंत्रण है, एक प्रकार का आत्म–नियंत्रण है। इसमें चारित्रिक उदारता है, जो आज्ञाकारिता में नहीं है। इसी प्रकार 'सम्मान' शब्द के स्थान पर 'मानव प्रतिष्ठा' शब्द बेहतर लगता है। निस्संदेह, कन्फ्यूशियस की चतुराई आज भी वैध है, तर्कसंगत है। अपनी रचनाओं में सत्य का उद्घाटन करने के लिए रचनाकार में यह चतुराई भी होनी चाहिए।

रूसी साहित्य के एक पन्ने से पता चलता है कि लैनिन, सखालिन द्वीप में हो रहे शोषण एवं अत्याचार पर लिखना चाहता था; लेकिन जार पुलिस से सतर्क रहना उसके लिए जरूरी था। उसने 'रूस' के स्थान पर 'जापान' और 'सखालिन' के स्थान पर 'कोरिया' शब्द का प्रयोग किया; परन्तु उसके पाठकों को यह समझने में देर नहीं लगी कि जापानी बुर्जुआ प्रणाली रूसी एवं सखालिन बुर्जुआ प्रणाली की तरह ही है। दिलचस्प है कि इस पुस्तक को दोषी नहीं ठहराया गया; क्योंकि रूस जापान का विरोधी था। जाहिर है कि जर्मनी में रहते हुए जर्मनी के बारे में बहुत–सी बातें नहीं की जा सकतीं; लेकिन आस्ट्रेलिया के बारे में कही जा सकती हैं। अतः लेखकीय चतुराई की कई युक्तियाँ हैं, जिनके जरिए संदिग्ध राज्य की आँखों में धूल झोंकी जा सकती है।

एक अन्य संदर्भ भी साक्षी है कि वाल्टेयर ने 'मेड ऑफ ऑरलियन्स' के बारे में एक भव्य एवं शृंगारिक कविता लिखकर चर्च के चमत्कारी सिद्धान्त का विरोध किया था। उसने उन चमत्कारों का इस विश्वसनीयता से वर्णन किया कि सैनिकों, अभिजात न्यायालय एवं मठवासियों के अतिथेय के मध्य जॉन ऑफ आर्क' कुँवारी ही लगे। उसने अपने शैली लालित्य एवं कामोदीपक साहसी कार्यों द्वारा, जैसा कि शासक वर्ग के विलासमय जीवन का वर्णन होता है, धर्म को बदनाम कर दिया जिसकी छाया में वे निर्बन्ध एवं स्वच्छंद जीवन व्यतीत करते थे। स्पष्ट है कि अपनी रचनाओं में वाल्टेयर लक्षित लोगों पर अपना निशाना दाग गया। महान लुक्रिटियस का कहना है कि एपिक्यूरियन नास्तिकता के प्रोत्साहन एवं प्रचार–प्रसार में काव्य–सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ था।

साहित्य में सत्य को लोगों में प्रसारित करने की चतुराई के कई संदर्भ विलियम शेक्सपियर, जोनाथन, स्विफ्ट जैसे रचनाकारों की रचनाओं में प्रायः मिलते हैं। विलियम शेक्सपियर के 'कोरियोलेन्स' नाटक के एक दृश्य में कोरियोलेन्स अपने बेटे के सामने खड़ी है, जो अपने मूल शहर को जा रही है। इस दौरान शेक्सपियर ने कोरियोलेन्स के संवाद को जान–बूझकर कमजोर बनाया है। उसने माँ–बेटे के दरम्यान उपस्थित सत्य को बड़ी चतुराई से प्रसारित किया है। एक अन्य नाटक 'जूलियस सीजर' में सीजर के मृतक शरीर पर एन्टनी के भाषण द्वारा उसने कहलवा दिया कि बूट्स एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। साथ ही उसने उसके कृत्य का भी वर्णन कर दिया। कृत्य का यह वर्णन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी है। जोनाथान स्विफ्ट ने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में सुझाव दिया है कि इंग्लैंड की समृद्धि को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए निर्धन लोगों के बच्चों का वध कर दिया जाए और उन्हें मीट के लिए बेच दिया जाए। यदि शासक वर्ग ने ऐसा नहीं किया, तो अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है। भोलेपन का बहाना करके स्विफ्ट ने सोच के एक ऐसे ढंग का समर्थन किया, जिससे वह सर्वाधिक नफरत करता था। वैसे भी यह एक प्रकार से निर्दयता की सोच थी; लेकिन यह भी सही है कि यदि अधिप्रचार सोच को उत्तेजित करता है, तो शोषितों की भलाई के लिए यह कारगर सिद्ध होगा।

तकरीबन चार हजार वर्ष पहले मिस्र के एक कवि ने भी सत्य का प्रसार करने के लिए चतुराई बरती थी। उस समय मिस्र में जबर्दस्त वर्ग संघर्ष चल रहा था। शासक अपने विरोधियों से बड़ी मुश्किल से बचाव कर पा रहा था। कवि ने एक लंबी कविता लिखी, जिसमें एक बुद्धिमान व्यक्ति शासक के न्यायालय में पहुँचता है और आंतरिक शत्रु के विरुद्ध संघर्ष के

लिए शासक को उत्साहित करता है। उसने राज्य में फैली अव्यवस्था एवं गड़बड़ी का इतना प्रभावी वर्णन प्रस्तुत किया, जो निम्न वर्ग के कारण उत्पन्न हुआ था। दरअसल, यह गड़बड़ी शासक की गलत नीतियों के कारण ही फैली थी। कहना न होगा कि सही सोच ही कालान्तर में मार्ग प्रशस्त करती है।

इसमें मतैक्य है कि 'विचार' कभी नष्ट न होनेवाली एक ऊर्जा इकाई है। वेदों, उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता एवं साहित्यिक व आध्यात्मिक कृतियों में व्यक्त विचार को आज तक कोई मार नहीं सका है। विचार का संपादन, परिवर्धन, संशोधन और नवीनीकरण अवश्य होता रहा है। जहाँ विचार है, वहाँ सत्य है। जहाँ सत्य–विचार है, वहाँ रचनाकार है और उसकी रचना भी है। सही रचना तो सत्य ही प्रसारित करेगी, क्योंकि इसका रचनाकार सत्य का अन्वेषी है। यथास्थिति में रहनेवाले लोग तो विरोध करेंगे ही। नए सिद्धान्तों एवं नए सत्यों के कारण समाज में जो उथल–पुथल होती है, उसका भी सामना साहित्यकार को करना पड़ता है। यदि एक जगह उसका साहित्य प्रतिबंधित होगा, तो दूसरी जगह उसे पढ़ा जाएगा। 'सेटेनिक वर्सेज' और 'लज्जा' को आज भी पढ़नेवाले मिल जाएँगे। सत्य को उद्घाटित करने के लिए सच्चा साहित्यकार वर्जनाओं पर प्रहार करेगा। शेरों के जीवन पर लिखने के लिए वह जोखिम उठाकर शेरों के बीच भी जाएगा।

यदि साहित्यकार समाज के लिए है, तो समाज द्वारा उसे सुरक्षरण मिलना ही चाहिए। तत्कालीन समाज ईसा मसीह, सुकरात, गैलेलियो, मंसूर हल्लाज, सरमद, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेग बहादुर आदि विभूतियों को सुरक्षित नहीं रख पाया था; लेकिन आज का समाज जागरूक है और वह समझने लगा है कि पुस्तक जैसी नैतिक अथवा अनैतिक कोई चीज नहीं होती है। साहित्यकार कितना चल सकता है, यह निश्चित रूप से समाज की सुरक्षा पर निर्भर करता है। साहित्यकार के सत्य एवं नए विचार के पक्ष में जितना समाज रहता है, उतना ही उसे संरक्षण मिलता है। उन्माद और जुनून सदैव साहित्यकार की संघर्ष चेतना को दंडित करते रहे हैं। अतः आज के परिप्रेक्ष्य में यदि धार्मिक वर्जनाओं का उदारीकरण होता है, सत्ता न्याय की रक्षक बनती है और सामाजिक निर्णयों में साहित्यकार की सहभागिता रहती है, तो सत्य–प्रसारण में उसके अस्तित्व को न तो कोई खतरा होगा और न ही उसकी रचनाधर्मिता को अवैध करार दिया जाएगा। साहित्य के स्वस्थ विकास के लिए यह जरूरी भी है।

कविताएं

छू लो

ज्योति सिन्हा
शंकरम् अपार्टमेंट
बेकारबाँध, धनबाद (झारखंड)
मो.–8340322694

अपने भीतर छूकर ही तो
जाना जा सकता है
हम कितने कठोर
कितने नर्म हैं
मन की गहराई में
उतरकर छू लो
टपकते शीतल बूँदों को
जाने कब सूख जाएँ
यह क्षण
इस दुर्गम संसार के
निर्मम समाज में
दुनिया के बदलते रिश्तों में
बर्फ की तरह कठोर
होते संबंधों में
थोड़ी नरमी बचाने के लिए
अपने
अंतर्मन को छू लो
छूकर ही भावनाओं को
बचाया जा सकता है
वरना
कठोरता तो अपने भीतर
भावुकता को
रिसने नहीं देगा
उसके पहले
छूकर आर्द्र कर लो
मन के कोमल हिस्सों को।

सुख

जैसे
छूती है सूरज की किरणें
सिन्दूरी विहान को
जैसे भाषा से लिपटाता है अर्थ
तब
समझ जाना
दुनिया जाग गई है
मोर का नाचना
जैसे
मनमोहक है
वैसे ही
रिश्तों में प्यार की
पकड़
जिन्दगी छू लेती है
जैसे अंधेरे कमरे में
बच्चे को छाती से लिपटाकर
चैन से सोना
बता देती है माँ की
ममता की गहराई
दुनिया का सारा सुख
मिलता है
पति के कंधे पर
सर टिकाकर रखने से
तब समझ जाना
वसंत ऋतु आ गयी है
जीवन में।

अवधेश माहेश्वरी
आगूचा, भीलवाड़ा (राजस्थान)
मो.–9166665907

कमजोर तू नहीं, तेरा वक़्त है

कमजोर तू नहीं, तेरा वक्त है
व्यर्थ में ही यों न झिझक
मुश्किलें तो वक्त के साथ बदलती है
इन्हीं से तो ज़िन्दगी सँवरती है
ग्रीष्म में सूरज का भी होता है तिरस्कार
शीत में उसका ही होता है इन्तज़ार
उजियाला तो हर अंधेरी रात बाद होता है
वक़्त कहाँ किसी के लिए ठहरता है
अपने भूत को तुझे भुलाना होगा
भविष्य में तभी तो संघर्ष होगा
जीवन बस हुनर का ही तो खेल है
बिना इसके सब बेमेल है
सागर की अपनी क्षमता है
माँझी भी कब–कहाँ थकता है
ग्रहण तो चन्द्र पर भी लगता है
फिर चाँदनी रात भी वही करती है
वर्षा भी सूखे में सयानी लगती है
बाढ़ में वही भयावह बनती है
जीवन में कभी खुशी तो कभी गम है
टिकता वही है जिनके हौसलों में दम है।

आलेख

'ब्रज में देखी होली'

डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव
'शिवायन', भिलाई, मध्यप्रदेश
मो. 9752606036

संध्या की धुंधलिका से ही फाग गाने की आवाज जोरों से सुनाई पड़ने लगी। धीरे–धीरे नगाड़े की थाप नजदीक आने लगी। मैंने साश्चर्य भाई साहब (देवर) से पूछा–क्या गाँव में शाम से ही होली खेलने लगते हैं? हँसते हुए उन्होंने कहा–होली तो कल देखना भाभी। फाग तो यहाँ बसंत पंचमी से ही गाना शुरू हो जाता है, पर अभी ये लोग हमारे ही घर आ रहे हैं।

क्यों का जवाब मुझे नहीं मिला। भाई साहब बाहर जा चुके थे। शहर की चमकती रोशनी की आदी मेरी आँखें लालटेन का साथ नहीं दे पा रही थी। कभी लड़खड़ाती, कभी टकराती। अजीब–से झुंझलाहट मन को जबरन उदास किये जा रही थी। कहाँ होली जैसा त्यौहार, यह भी इस माहौल में कितना अकेलापन महसूस कर रही थी। कोई ननद भी नहीं, जिससे अन्दर बैठे बातें करूँ। वहीं बहू होने के कारण जेठानी–देवरानी का प्रश्न ही नहीं है। रही देवर की बातें, तो उन्हें चौपाल से फुर्सत कहाँ। महीनों बाद आये हैं कुछ अपनी सुना रहे हैं कुछ अपने लोगों की सुन भी रहे हैं।

गेहूँ की पकी बालियाँ, एक नारियल, कुछ गठियारी दूब से सजी एक थाली लिये हीरालाल ने कहा–ठकुराइन थोड़ा गुलाल और एक लोटा पानी देना। मैंने हीरालाल को गुलाल और पानी देते हुए पूछा–इसका क्या करोगे?

सौंजिया ने आँखें फाड़ते हुए कहा–नहीं जानती क्या?

मैंने सिर हिलाकर नहीं कहा।

इस पर हीरालाल ने हँसते हुए कहा–तब तो बस देखते ही जाओ। बड़ा मजा है होली के त्यौहार में। अभी ये होली के लोग बड़े ठाकुर के अगवानी के लिए आये हैं। बोधरा दीवान तक टोली आगे–आगे गाते–बजाते जायेगी। वहाँ पर ठाकुर होलिका की पूजा करेंगे। गेहूँ की बालियाँ और नारियल उसमें चढ़ायेंगे। फिर आग लगते ही लपटें जैसे–जैसे बढ़ेंगी, टोली के लोग भी फाग जोरों से गाते चले जायेंगे।

रात–भर फाग गाने की मतवाली धुन मुझे कब सुला गई, पता ही नहीं चला। सुबह उठी, तो रंगत ही निराली नजर आई। एक भीनी मादक भरी खुशबू से मैं सजग हो चारों तरफ देखती रही। बरामदे में तीन सौंजिया बैठे झूमते हुए भांग की पिसाई कर रहे हैं। कोई सौंफ, बादाम और काली मिर्च पीस रहा है। चरवाहा लखन तभी पीतल की बड़ी बाल्टी में दूध ले आया। बलदेव आँगन की लिपाई दत्तचित्त होकर कर रहा है, तभी अमरौतिन एक छेना (कण्डा) में होलिका दहन का आग लिये आई और उसी से आग जलाई। यह भी गाँव का एक अपना रिवाज है। बिहारी का पानी लाने का क्रम आज खत्म ही नहीं हो रहा था। आँगन में रखे दोनों बड़े ड्रम को वह भर रहा था। हीरालाल भांग की पिसाई खत्म कर रंग के डिब्बों से दोनों ड्रम पानी को लाल रंग में बदल दिया।

दैनिक कार्यों से निवृत्त हो मैं माँ जी को रोंठ, अनरसा बनाने में साथ देने लगी। इधर घड़ी की सुई ग्यारह बजाने लगी, पर होली के रंग के छींटे अभी भी नजर नहीं आ रहे थे। दोनों ड्रम रंग से भरे थे, तभी सौंजिया भांग को घोंट–घोंट कर दो पीतल के बड़े जग में शक्कर दूध मिला तैयार कर उसे ढँककर बाहर चले गये।

मैं सोचने लगी–ये कैसी होली है। अब तक तो हमलोग शहर में कितना रंग खेल लिये होते और इतने समय तो नहाने की तैयारी में लगे रहते। वहाँ तो सुबह आँख मलते ही रंगों के फब्बारे छूटते नजर आते हैं। अम्मा साथ में डाँटती भी जाती है–जाओ, बाहर जाकर खेलो।

अबकी बार मैंने भाई साहब की चुटकी ली–भई! गाँव की होली कब मनाओगे। सभी कोई खा–पीकर लेट रहे हैं। बस, देखते ही जाओ, अब पूछने का समय नहीं, कह भाई साहब मुस्कुरा रहे थे। गुनगुनाती हुई मैं भी आराम करने की गरज से लेट गई। कितनी ही होली की बातें याद आ रही थीं। अमरौतिन के उठाने पर नींद टूटी। यह भी अच्छी रही होली के दिन भी कोई सोता है, पर यहाँ तो ...।

कमरे के बाहर निकली, तो बरामदे में औरतों की इतनी अधिक भीड़ हो गई थी कि कहीं पैर रखने की जगह नहीं। मैं उन सभी औरतों को विस्मित नजर से देख रही थी। वे सभी अच्छी तरह से तैयार होकर आई थीं। शादी–शुदा औरतें छह इंच लम्बी मांग निकालकर उसमें सिंदूर भरी थीं और माथे में चमकती लाल–पीली टिकली लगायी थीं। कुछ तो पान भी खा रही थी। लाल, पीली, हरी, नीली के बीच एक–दो बेल बूटेदार और फूलपत्ती प्रिंट की हुई साडियाँ पहनी थी। इतनी सारी गाँव की औरतों को देख मैं सोच रही थी कि क्या इन्हीं लोगों के बीच मुझे होली खेलनी पड़ेगी। तभी रंग–गुलाल में लथपथ भाई साहब दिखाई पड़े। भाभी! जरा गुलालवाली थाली देना। मैं अन्दर जाकर गुलाल से भरी थाली ले आई। भाई साहब कह रहे थे–अरे भैया, कब शुरू करोगे? जरा, भाभी के साथ अच्छे से खेलना, गाँव की होली देखी नहीं है। यह कह गुलाल मुझ पर उड़ाते हुए चले गये। मैं सचमुच हतप्रभ हो रही थी कि कैसे इन लोगों के साथ खेलूँगी। एक दो बज रहे हैं, पर अभी तक कोई किसी पर रंग नहीं डाल रही हैं। न ही किसी के हाथ में गुलाल है, न ही रंग न पिचकारी।

बाहर नगाड़े की आवाज के साथ लोगों के फाग गाने की आवाज बड़ी तेजी से आ रही थी। घर के सभी सौंजिया कोई गुलाल की थाली पकड़े था, तो कोई बीड़ी–माचिस से भरी थाली लिये जा रहा था। बाहर से आये किसानों को गिलास में भर–भर कर भांग बिहारी और बलदेव बाँट रहे थे। उसके इर्द–गिर्द बच्चों की टोली खड़ी हो गई थी, जो मौका पाते ही अपने पिचकारी या शीशी में डुबा रंग निकाल लेते। तब बलदेव की जोरदार हुंकार से बच्चे खिलखिलाकर हँस देते। होली है होली है, बुरा न मानो, होली है।

अबतक माँ जी भी बरामदे में आ गई। वे बहुत खुश थी। दो बूढ़ी औरतों पुरोहित जी के घर से आई थीं। उनकी चरण छूकर उन्होंने मुझसे कहा–इस पर मैंने भी उनका अनुकरण किया। माँ जी ने अमरौतिन से कहा–जा यहाँ के लिए भी भांग ले आ। अमरौतिन यह सुनते ही पीतल की गुंडी लेकर हीरालाल के पास जा पहुँची और वहाँ से पीतल के 4–5 गिलास तथा माँग से भरी गुंडी लेकर आ गई। फिरन्तीन भी हँसती हुई अमरौतिन के पास पहुँच गई। वे दोनों गिलास भर–भरकर भांग औरतों को देती गई। दूर खड़ी भगवती पास आकर जल्दी–जल्दी गिलास धोने लगी। यह क्रम करीब एक घंटे तक चला। सभी औरतें भांग पीकर बातचीत जरा तेजी से कर रही थी। तभी अमरौतिन दो बाल्टी में रंग ले आयी। शुरूआत भगैया ने की। एक लोटा रंग लेकर माँ जी के सिर पर रंग की धार बहा दी। फिर माँ जी के चरण छूकर होली है–कह झूमने लगी।

माँ जी ने भी एक लोटा रंग भगैया के ऊपर डाल दिया, रंग पड़ते ही भगैया चहकने लगी।

''मैं तो खेलूँ होली ओ संगवारी
ढूंढों तो कहाँ छिपे बनवारी।''

फिर तो भूरी, मुरही, फिरन्तीन–सभी मेरे ऊपर रंगों की बौछार करने लगीं। कोई रंग डाल रही है, कोई सरकार की माला पहनी रही है, पर सभी पैर छूते चली जा रही है। एक डेढ़ घंटे तक मैं रंगों की धार में भीगती चली गई। कौन सुनता वहाँ मेरी। सभी मस्त थे। पूरा गाँव ही तो घर में उमड़ आया था। बाहर उड़ते गुलाल लाल बादल बनकर छा जाते, तो कभी रंगों की फुहार

छींटे मारती चली जाती। गाने की धुन चढ़ती ही जा रही थी, बीच में कहीं बड़े ठाकुर या मंझले ठाकुर दिखाई पड़ते या सौंजनिन लपककर रंगों की धार से रोककर पैर छूते। ठाकुर लोग भी उनको रंग डालते। मैंने देखा, रंग पड़ते ही सौंजनिन के चेहरे कृतकृत्य हो उठते।

गाजे–बाजे की धुन की तरंग ने कब अनजाने में ही गाँव की इन अल्हड़ युवतियों के रागरंग में मुझे डुबा दिया। समझ नहीं सकी रंगों की यह कैसी बौछार है, जो बन्द होने को नहीं आ रही है। सोच रही थी, तभी माँ जी ने थाली भरा गुलाल देकर कहा–अब तुम भी इन लोगों को लगाओ। मैं भीड़ में घुसी, उनको गुलाल लगाने हाथ बढ़ाती, तो कितने ही गाल मेरे सामने आ जाते। किसी को भी अपने आपको रंग से बचाने की सुधि नहीं है। सभी चाहते खूब रंग लगे, खूब गुलाल लगे। मुझे लगा उनकी खुरदुरी कड़े हाथों से मेरे गाल छिल जायेंगे; परन्तु तभी भगैया सामने आकर बोली–''देख ठकुराइन! हमन लोग गुलाले जॉन ऐसने हर साल खेलबे।'' कहकर यह मेरे पैर पड़ने लगी। मैं उसके निश्छल और भोलेपन की मधुरता में अपनी गालों की सिहरन भूल गई। तभी बाजे वाले लोग आगे बढ़ने लगे। उनके साथ गाँव के सभी किसान गुलाल उड़ाते एक दूसरे के गले में हाथ डाले, नाचते–कूदते चले जा रहे थे। पीछे सभी औरतें उसी हालत में दौड़ने लगी। अपने पास खड़े बलदेव से मैंने पूछा–ये लोग अब कहीं जा रहे हैं? तभी कोई अपने आँगन में अपनी शक्ति अनुसार रंग घोलकर रखे होंगे।

बलदेव बच्चों की टोली को 'चलो रे' कह दौड़ाते हुए स्वयं भी चला गया।

मैं सिर से पैर तक रंगों में नहायी कैसे सुख से अभिभूत हो रही थी। रंग से सराबोर होली तो कितनी ही मनायी, पर आज लगा ब्रज की होली मैंने अपने गाँव में ही देखी।

सभी मदमस्त हो रंगों की बहार से सुध–बुध भूलकर उड़ते अबीर गुलाल में एक रस हो जाने को व्याकुल हैं। वे सिर्फ खुश होना चाहते हैं, जितना अधिक खुश हो सके।

कविता

घर पर सब कैसे हैं

महेश कुमार केशरी
मेघदूत मार्केट फुसरो
बोकारो, झारखंड–829144

मैं दिल्ली जैसे महानगर में
जाना चाहता हूँ
और भी
बहुत सारे महानगरों में
मुम्बई नहीं बंबई, तब का बंबई
कोलकाता नहीं कलकत्ता, पुराना कलकत्ता
चेन्नई नहीं मद्रास, पुराना मद्रास
और मिलना चाहता हूँ
अपने ही तरह के सीधे–साधे
मनई से जो निपट देहाती हो
जो किसी अजनबी को
भी देखते ही गर्मजोशी से मिले

झपटकर छीन ले झोला,
बेग या थैला
बड़े अधिकार से
और बिना औपचारिकता के
पकड़ ले हाथ और खींचकर
ले जाये रिक्शे तक कि ये
हमारे शहर में पहली बार आये
हैं, मेहमान हैं हमारे
इन्हें मेरे घर पर ले चलो
खबरदार किराया इनसे मत लेना
मैं दे रहा हूँ।

जिसे पता हो बड़े शहर की
तकलीफें, फाकाँकशी के दिन
सर्दियों में फुटपाथ पर की ठंड
गर्मियों की तपती हुई सड़क
एक कुर्ता, एक लुँगी
एक हवाई चप्पल, एक गमछा
एक बीड़ी का बंडल जब
बात का छोर टूटने लगे तो
वो लाल चाय बनाने में जूट जाये
अपने धुँआए स्टोव पर सस्पेन में
एक बीड़ी जलाकर सामने से दे
और पूछे एक सवाल कि घर
में सब कैसे हैं
इधर शहर कैसे आना हुआ
अच्छा, अम्मा बीमार हैं, कोई बात नहीं
तुम जितने दिन चाहो, यहाँ रह सकते हो
आराम से इलाज करवाओ
खाने–पीने की भी चिंता मत करो
मेरे पास जो थोड़े–बहुत पैसे हैं
उनसे काम चलाओ
घर पर खत मत लिखना
नहीं, फोन भी नहीं करना है
सब लोग परेशान हो जायेंगे
क्या जॉब के सिलसिले में आये हो
ये भी अच्छा रहा, हमारे गाँव का कोई
लड़का अफसर बना है
और वो तुम हो इससे बड़ी बात और क्या
खुशी मेरे लिए
भला और क्या होगी
चलो, मैं अफसर ना बन सका
अपना ही कोई भाई बना है
समझो मैं ही आज अफसर बन गया
मेरी चिर संचित अभिलाषा आज पूरी हो गई

कल ही जाकर देवी स्थान में बताशा चढ़ाऊँगा
मैं भी, समस्तीपुर से नौकरी की तलाश में
यहाँ आया था।
नौकरी तो ना मिली, बेलदारी का काम करने लगा
खैर, मैं बहुत खुश हूँ
वो, इस बात की भनक भी ना लगने दे
कि कितने दिन वो जब शहर में नया–नया आया था
तो महीनों भूखा सोया
बाहरी भीतरी, लोकल और बाहरवालों के बीच
की खाई को पाटते–पाटते कितनी लाठियाँ खाईं
आज भी पीठ पर नीले निशान हैं
पर फिर भी टिका रहा, दिल्ली, बंबई, कलकत्ता और मद्रास में
गँवई आदमी छुपा जाए अपनी मुस्कुराहट में
अपने शहर में रहने की दास्तान।

आलेख

लघुपत्रिका का आंदोलन

दयानन्द जायसवाल
9931240303

एक आंदोलन के रूप में लघु पत्रिकाओं की शुरूआत मूल रूप से छठी से सातवीं दशक के बीच हुई है। उस समय इनकी सीधी लड़ाई सरकारी और व्यावसायिक घरानों की पत्रिकाओं से थी। साहित्य में यह मोहभंग का दौर था।

भारत पर सन् 1962 में चीन के हमले और 1964 में नेहरू के निधनोपरान्त एक ओर जहाँ हरेक क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग हो रहा था। वहीं दूसरी ओर नेहरूवादी एकछत्र सत्ता के बुर्जुआ लोकतंत्र में अन्तर्विरोध और दरारें उभरने लगी थीं तथा समाजवाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता विरोधी तमाम तरह की दक्षिणपंथी और मध्यममार्गी अवसरवादी ताकतें, मुख्य रूप से साम्प्रदायिक और हिन्दुत्ववादी दक्षिणपंथी शक्तियाँ गोलबन्द होकर शक्तिशाली हो रही थी। उन्हें अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों, उनकी बहुराष्ट्रीय पूँजी तथा देशी जमींदार पूँजीपति घरानों और उनकी पत्र–पत्रिकाओं का भरपूर समर्थन था। इसका असर तमाम सांस्कृतिक क्षेत्रों और साहित्यिक पत्रकारिता पर भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था। सरकारी, अर्द्ध सरकारी और प्रतिष्ठानी पत्र–पत्रिकाओं के साथ ही 'धर्मयुग', 'सारिका', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'ज्ञानोदय' जैसी सेठाश्रयी पत्रिकाओं ने गतिशील सोच के लेखकों, विशेष रूप से नए लेखकों के लिए प्रकाशन के अपने सभी दरवाजे बंद कर दिए। इसी के विरोध में हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में 1964–65 ई. से जबर्दस्त लघु–पत्रिका आन्दोलन चला।

रामकृष्ण पांडेय ने लघु–पत्रिकाओं के भारतीय परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक समय था, जब–जब भारतीय भाषाओं में छोटी पत्रिकाओं का एक बड़ा आंदोलन विकसित हुआ था, उसका मूल स्वर व्यवस्था–विरोध और बड़ी पत्रिकाओं की जकड़बंदी से साहित्य को बाहर निकलना था। कहना न होगा कि छोटी पत्रिकाओं के आंदोलन ने उस राजनीति को सम्पोषित किया, जो परिवर्तनकर्मी थे और सामाजिक रूपांतरण की पक्षधर थी। इसी दौर में बड़े प्रकाशन समूहों की पत्रिकाओं के प्रतिरोध में छोटे स्तर पर (व्यक्तिगत या लेखकों के समूहों द्वारा) कई पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। इनके जरिए कई रचनाकार उभरे, जो भविष्य में महत्त्वपूर्ण साबित हुए। उस दौर में साहित्य ही नहीं, अन्य कई क्षेत्र भी, बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रहे थे। लेखकों के समूह छोटे–छोटे आयोजन कर अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया तथा नवोदित लेखकों को भी उसमें स्थान दिया जाने लगा। कई पत्र निकलने लगे। आकण्ठ, सुमनलिपि, मू.एस.एम. पत्रिका का लघुकथा विशेषांक, नाट्य विद्या विशेषांक, लोक नाट्यरंग विशेषांक, कविता विशेषांक आदि ने साहित्य को समृद्ध किया। वस्तुतः इस दौर में खास बात यह हुई कि 1967 ई. में नक्सलवादी आन्दोलन के सांस्कृतिक क्षेत्रों खासकर साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में उसका जबर्दस्त असर देखा गया। लघु–पत्रिकाओं का खासा बड़ा हिस्सा तथा नवयुवा लेखकों– संस्कृतकर्मियों का बहुमत इस ओर आकर्षित होने लगा। इस आधार पर कहा जा सकता है कि लघु–पत्रिका के मर्म में परिवर्तनकारी राजनीति और बेहतरी की दिशा में सामाजिक रूपांतरण की आवाज गूंजने लगी, उसमें वर्चस्ववाली विचारों के प्रतिरोध का मुद्दा केंद्रित होने लगा। यह बताने की जरूरत नहीं है कि हमारे यहाँ पत्रकारिता का विकास राष्ट्रीय आंदोलन के साथ हुआ। उसके सामने देश को आजाद कराने का लक्ष्य था। साहित्यकारों ने पत्रकारिता को आगे बढ़ाने और उसे जनमाध्यम बनाने का काम किया। एक तरफ भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, यशपाल, शिव वर्मा जैसे अनेकानेक साहित्यकारों की भूमिका थी, तो वहीं गणेश शंकर विद्यार्थी, महात्मा गाँधी, नेहरू, डॉ. अम्बेडकर, मौलाना आजाद, तिलक आदि ने पत्र–पत्रिकाओं को राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बनाया। कविवचन सुधा, सरस्वती, चाँद, माधुरी, मतवाला, प्रताप, नया पथ, विकल्प जैसी असंख्य पत्र–पत्रिकाएँ इस दौर में निकलीं। यह पत्रकारिता मूल्य आधारित थीं। यहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ गौण था, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वार्थप्रधान था। आजादी के बाद भी एक हद तक तथा कुछ समय तक इन मूल्यों का निर्वहन हुआ।

उन दिनों आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर देश में हो रहे परिवर्तनों को नजर में रखते हुए तत्कालीन शासक वर्ग ने अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए नाना प्रकार के जो हथकंडे अपनाए शाम, दाम, दंड, भेद की नीति का अनुसरण किया, पत्रकारिता का यह व्यावसायिक रूप उन्हीं नीतियों का पक्ष उजागर करता है। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रभुत्वशाली वर्ग 'बुर्जुआ' को अपनी प्रभुता कायम रखने के लिए अर्थव्यवस्था तथा समाज के सभी सशक्त माध्यमों पर अपना नियंत्रण रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। आर्थिक व्यवस्था इनके अधीन थी ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को अपने अनुकूल करने के प्रयास में रहते थे। जातिप्रथा, धर्म एवं सामाजिक संस्कारों को पूंजीपतियों ने ही नहीं उनके प्रतिनिधि शासक वर्ग ने भी प्रश्रय दिया। सरकारी आर्थिक नीति मुट्ठीभर धनिकों को ही सुरक्षा प्रदान कर रही थी। शिक्षा और रोजगार के असन्तुलित अनुपात, प्राकृतिक आपदाएँ और व्यावसायिक मंदी, कुल मिलाकर आर्थिक संकट भारतीय अर्थव्यवस्था को घेरे हुए था। इस विषादमय स्थिति ने कुछ मध्यवर्गीय युवाओं को भाग्यवादी, अवसरवादी बना दिया। साहित्य में भी इसी के कारण अनेक 'व्यक्तिवादी अथवा सार्वभौमिक बहिष्कार प्रवृत्तियाँ उपजीं। इन प्रवृत्तयों को पूंजीपति तथा सरकार–दोनों ने भुनाया। कहीं नौकरी, तो कहीं पुरस्कार के लोभ में युवाओं का एक वर्ग इनके संरक्षण में चला गया। बदले में इनके साहित्य को व्यावसायिक पत्रों ने घोषित एवं पल्लवित किया। साहित्य तथा पत्रकारिता को सही भूमिका से हटाने के लिए प्रचार–तन्त्रों आकाशवाणी, साहित्य अकादमी, प्रकाशन संस्थान आदि को नियंत्रित एवं निर्देशित किया गया। सामंती पूंजीवादी व्यवस्था ने आकाशवाणी की अफसरी, राज्यसभा की सदस्यता. शिष्टमंडलों की विदेशयात्रा, अकादमी पुरस्कार, ऊँचे वेतनों पर दिनमान, धर्मयुग में नौकरी, ज्ञानपीठ की विशाल धनराशि, सेठाश्रयी प्रकाशनों के ऊँचे पारिश्रमिक और रॉयलिटी, विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठित नौकरियों और पुस्तकों के पाठ्यक्रम में समावेश, अकादमी और मंत्रालयों के वेतनभोगी पदों तथा विदेशी दूतावास से मोटी आमदनी के प्रलोभन चक्र में अनेक साहित्यकारों को फँसा लिया। हम इसका कितना ही विरोध क्यों न करें; लेकिन यह एक दुखद सत्य है कि हमारे अधिकांश मध्यवर्गीय सुविधाजीवी साहित्यकार जाने–अनजाने और प्रत्यक्ष रूप से दरबारी साहित्यकार भी अप्रिय स्थिति में फँस गए। पश्चिमी पतनशील अस्तित्ववादी तथा अध्यात्मवादी धार्मिक रहस्यवादी साहित्य के रचनाकारों ने सांस्कृतिक पतन को बढ़ावा दिया। सरकार द्वारा भी इस पतन को भरपूर सहयोग दिया गया। भारत ही नहीं, सभी पूंजीवादी देशों में यह प्रवृत्ति बहुत सक्रिय रही। प्रभुत्व कायम रखने के लिए सरकार द्वारा धर्म व रूढ़िग्रस्त अंधविश्वासों और रहस्यवाद को अस्त्र बनाकर प्रोत्साहित किया जाता रहा। भारतीय शासक वर्ग में भी यह विचित्र विरोधाभास था कि उसने एक ओर सामंती मूल्यों को प्रश्रय दिया, तो दूसरी ओर पूंजीवादी सभ्यता का भी समर्थन किया। जिसने जनसाधारण को एक भ्रमित यथार्थ और दृष्टि प्रदान की। पुरातनपंथी, पुनरुत्थानवादी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के प्रचार–प्रसार के लिए कला एवं साहित्य में भी इसे बढ़ावा दिया गया। हालाँकि 'साहित्य' एवं 'पत्रकारिता' के माध्यम से प्रगतिवादी बुद्धिजीवी वर्ग जनसाधारण को 'पूंजीवादी,

साम्राज्यवादी तथा सामंती' खतरों से निरंतर आगाह करता जा रहा था। बावजूद इसके पूंजीपतियों ने पत्र निकाले और भाड़े पर लेखक और सम्पादक रख लिये यानी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की जड़ में कुठाराघात होने लगा। पूंजीपतियों के स्वार्थ की बातों पर जनहित का नकाब चढ़ाकर पेश किया जाने लगा। पूंजीपति के अधीन पत्रों–पत्रिकाओं की पूरी शृंखला आ गई। बड़े औद्योगिक घरानों से अनेक पत्र तथा धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, कादम्बिनी जैसी पत्रिकाएँ निकली, कुछ सरकारी अथवा सहकारी स्वर के साहित्य संस्थान या प्रकाशन संस्थानों ने 'ज्ञानोदय', 'आलोचना', 'कल्पना' जैसी पत्रिकाएँ प्रकाशित की। इन पत्रिकाओं की प्रकाशन नीति जो भी रही हो; परन्तु अपने असीमित साधनों के बल पर इन्होंने पत्रकारिता पर नियंत्रण पाने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की। इनके इस व्यापक प्रभाव के मध्य प्राणघाती संघर्ष करना पड़ा। उन पत्रकारों एवं पत्र–पत्रिकाओं को जो स्वाधीनता पूर्व की जनवादी पत्रकारिता की परंपरा को सीमित साधनों के साथ भी आगे बढ़ना चाहते थे। सन् 60 से 66 ई. के दौरान पत्रकारिता का यही वह आयाम था, जहाँ स्पष्ट रूप से दोनों प्रकार की पत्रिकाओं के मध्य विरोध–प्रतिरोध के वैचारिक संघर्ष को तीव्रता से अनुभव किया गया, जिसके परिणाम रूप में सामने आया 'लघु पत्रिका आंदोलन'। देश के कोने–कोने से विभिन्न पत्रिकाएँ इस आंदोलन में सक्रिय सहयोग करती हुई प्रकाशित हुईं।

20वीं शताब्दी के आरंभिक दिनों में इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा रूस जैसे कई देशों में यह आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इनकी परिस्थिति भिन्न थी, किंतु उद्देश्य तथा विरोध के स्वर एक समान थे। इन पत्रिकाओं से जुड़े बुद्धिजीवी वर्ग में – साहित्यकर्मी, कला तथा थियेटर से जुड़े कलाकार शामिल थे। इस प्रकार ये पत्रिकाएँ एक 'सामूहिक विरोध' के रूप में यह मात्र साहित्य तक ही सीमित न रहा, अपितु सभी सांस्कृतिक स्तरों तक व्याप्त रहा। वैचारिक रूप से ये पत्रिकाएँ राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध हुआ करती थीं। इस परिवर्तन को लाने के तरीकों के संबंध में इनमें मतभेद थे; किंतु एक बात जो सभी पत्रिकाओं में समान थी, वह यह कि ये सभी पत्रिकाएँ अधिक मानवीय आग्रह की माँग करती रही। इसी कारण इनका महत्त्व एक देशकाल की सीमा से निकलकर अंतराष्ट्रीय स्तर पर फैल गया।

बामपंथी विचारधारा से लैस अन्य ऐसी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं, जिन्होंने किसी दल विशेष से तो अपना संबंध नहीं जोड़ा; किंतु व्यापक स्तर पर सर्वहारा वर्ग की राजनीति का समर्थन किया, इनमें प्रमुख हैं– वाम, प्रारंभ, समारंभ, गोधूलि, विध्वंस, क्यों, परिपत्र, कालपत्र, इबारत, आमुख कथन, प्रतिबंध, कविता, प्रतिमान, कलम, कालबोध, अनाहूत आदि ऐसे अनेक नाम हैं। सन् 1975 के बाद भी पत्रिकाएँ आईं–आईना, इसलिए, कथन, कदम, दीर्घा, फिर, दिशाबोध, हिराबल, ऋतुचक्र, अंततः, अंतर्गत, आवेश, प्रतिबद्ध, परिपत्र, युग परिबोध उत्तरार्थ एवं उत्तरगाथा आदि। सन् 1970 से 1980 तक प्रकाशित हुई प्रमुख पत्रिकाओं का यदि अध्ययन किया जाय, तो कुछ ऐसे मुद्दे सामने आते हैं, जिनपर प्रायः सभी पत्रिकाओं ने विचार किया, कमोवेश सभी पत्रिकाएँ जनवादी प्रकृति की रही; किंतु उत्तरार्द्ध काल, अर्थात् आपातकाल के बाद से पत्रिकाओं में विरोध का स्वर अधिक तीखा होता हुआ मिलने लगा।

लघु पत्रिका आंदोलन का यह दशक विकास की दृष्टि से कुछ दुर्भाग्यपूर्ण रहा, जब आपातकाल के दौरान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगा दी गई, व्यापक स्तर पर नागरिक अधिकारों का हनन हुआ, साहित्य एवं कला का ह्रास हुआ, ऐसी स्थिति में विशेष रूप से लघु पत्र–पत्रिकाएँ दमन का शिकार बनी। अपने आंदोलन के आरम्भ से ही लघुपत्रिका पूंजीवादी सामंती व्यवस्था एवं मूल्यों का विरोध करती रही है, अतः तानाशाही सहन कर पाने की इससे उम्मीद नहीं थी। इस कारण अनेक प्रेस अधिनियम बनाकर ऐसी पत्रिकाओं के प्रकाशन पर सेंसरशिप लगा दी गई। समाचार पत्र भी इस दमन के शिकार हुए। इन प्रतिबंधों का विरोध करते हुए 26 जून, 1977 को अधिकांश समाचार पत्रों ने उस और अगले दिन के संपादकीय स्तंभ खाली छोड़ दिए। यह मूक विरोध था, जो एक तरह से आपातकाल बुद्धिजीवियों तथा पत्र–पत्रिकाओं की क्रांतिकारिता का परीक्षण–काल सिद्ध हुआ। इस दौर में मात्र चार या पाँच पत्रिकाओं को छोड़कर शेष लुप्त हो गई। इसके बाद कि पत्रिकाओं में परोक्ष रूप से नई प्रवृत्तियाँ जन्म लीं। इसमें अनूदित साहित्य का विकास हुआ। बिम्बों, प्रतिबिम्बों की बहुतायत वाली नई शैली का प्रचलन हुआ। नए सौंदर्य शास्त्र का चिंतन हुआ। इस कारण रचनाओं का अभाव होने लगा। प्रेमचंद, निराला, भारतेंदू, मुक्तिबोध जैसे साहित्यकारों की कालजयी रचनाओं का सहयोग लिया गया। इन परिस्थितियों में विदेशी साहित्यकारों विशेषकर जर्मन, अफ्रीकी, अमेरिका के क्रांतिकारी साहित्य का प्रचलन हुआ। स्पेनी, चीनी, रूसी, कवियों की रचनाओं का अनुवाद हुआ। इस दशक के पूर्वार्द्ध में राजनीतिक कविता लिखने की दिशा में कई प्रयास हुए। क्रमशः छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता आदि विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के प्रचार–प्रसार में पत्र–पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यदि यह कहा जाय कि पिछले कई दशकों से हिंदी साहित्य लघु–पत्रिकाओं के माध्यम से ही प्रकाश में आता रहा है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। लघुपत्रिका ने जब से आंदोलन का रूप लिया, तभी से इसने पाठकों को अपने देश तथा विश्व के श्रेष्ठ साहित्य से परिचय कराया।

खासकर लघुपत्रिका वह होती है, जो सीमित पूंजी, सीमित साधनों में प्रकाशित हो और निःस्वार्थ सेवा करती हो तथा व्यवस्था के सामंती पूंजीवादी मूल्यों का विरोधकर प्रगतिशील भूमिका अदा करती हो। आज लघुपत्रिकाओं में संगठन का अभाव बना हुआ है, सभी पत्रिकाएँ अपने स्तर पर व्यवस्था, व्यावसायिकता का विरोध करती हुई लघुपत्रिका का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास कर रही है, किंतु संगठन के अभाव में आंदोलन के ये सूत्र बिखड़े पड़े हैं। आर्थिक तथा अन्य सहयोग के अभाव में इनका क्षेत्र तथा पाठक ही सीमित नहीं हो रहे हैं, बल्कि इसके जीवन–काल भी गिने–चुने अंक तक सिमटकर रह जाता है। आज पत्रिका निकलना इतना कठिन हो गया है कि संपादक घर, परिवार सबसे दूर हो जाते हैं, लिखना, पढ़ना, छापना, शुद्ध करना, पैकिंग करना, डाकघर जाकर भेजना, इस सबका भार संपादक को उठाने के कारण अपना लिखने का समय ही नहीं मिलता, फिर अर्थ की कमी, कभी रचनाओं के चयन की समस्या। इतने संघर्षों से जूझने के बाद भी पाठक गिने–चुने मिलते हैं। अगर मिलते भी हैं, तो पत्रिका खरीदकर पढ़नेवाले उत्साही पाठक नहीं मिलते। अब पत्रिका हेतु नई रणनीति बनानी होगी, पत्रिका में उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री प्रदान करना, पाठकों के साथ संबंध बढ़ाना और अपने प्रकाशन को लगातार अपडेट करना। संपादकों की आपसी तालमेल होना। नए विचारों और विधागत प्रयोगों को प्रोत्साहित करना। साहित्य के उद्देश्य को समाज से जोड़ना होगा। इन सबके बावजूद यदि लघुपत्रिका अपने विशेष पाठक वर्ग के बाहर लोकप्रिय न हो सकी, तो इसका कारण साधन हीनता व साक्षरता का अभाव है। लघु–पत्रिका हर युग में अपने सामयिक सन्दर्भों को वाणी देती रही है, राजनीतिक आंदोलन से आलोड़ित हुई साहित्यिक आंदोलन को विकसित करती रही है। साहित्यिक आंदोलनों में काव्यान्दोलन ही अधिक प्रबल रहे। अतः विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के अनुसार उनकी समर्थ पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। इन दो दशकों में हजारों पत्रिकाएँ प्रकाशित हो चुकीं; किंतु अब तक ऐसे किसी पुस्तकालय की स्थापना नहीं हो सकी है, जहाँ सभी लघु–पत्रिकाएँ मिल सके। अभी भी साहित्यकारों को इसके प्रति समर्पण का भाव रखना होगा और इसकी प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करना होगा। सादर....।

आलेख

पुनर्जन्म का सच क्या अधूरी कामना है

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर (धार) म.प्र
9893070756

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद से लेकर वेद, दर्शनशास्त्र, पुराण, गीता, योग आदि ग्रंथों में पुनर्जन्म की मान्यता का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार शरीर की मृत्यु ही जीवन का अंत नहीं है; परंतु जन्म–जन्मांतर की शृंखला है। पुराण आदि में भी जन्म और पुनर्जन्मों का उल्लेख है। जीवात्मा पुनर्जन्म लेती है। जीवात्मा को कर्मों के आधार पर जन्म मिलता है। जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर के साथ उसके धर्म, कर्म व ज्ञान साथ रहते हैं। शरीर छोड़ते समय मन में जो अधूरी कामना रह जाती है, तब वह वर्तमान जन्म में उसकी पूर्ति के लिए जन्म लेता है। कुछ वैज्ञानिक उन्हें पूर्वजन्म का अर्जित ज्ञान नहीं मानते। उनका कहना है कि मस्तिष्क (इतंपद) में एक प्रकार का रसायन प्रोटोजोआ नाम का होता है, जिसमें मस्तिष्क का एक विशेष भाग सक्रिय हो जाता है और इस प्रकार की विलक्षणता आती हैं। इलेक्ट्रॉनिक दुनिया में मोबाइल में दो सीम और किसी मोबाइल में ज्यादा सीम भी होती है, जो मेमोरी की क्षमता रखती है, तो मानव मस्तिष्क में पुनर्जन्म की मेमोरी रह सकती है। जो कुछ वर्षों बाद पिछले जन्म की मेमोरी धीरे–धीरे कम हो जाती है। एक पुनर्जन्म से जुड़ी एक घटना है। जहाँ जन्मे एक बच्चे ने 4 साल की उम्र में अपने पिता को बताया कि उसका घर दूसरे गाँव में है, जहाँ उसके बीवी बच्चे भी हैं। पिछले जन्म में उसके चचेरे भाइयों ने विवाद के चलते खेत में उसकी हत्या कर दी थी। जब उस बच्चे के पिता ने उनके बताए आधार पर खोजबीन की, तो ये बात सच निकलीं। अपनी माँ और बहनों के अलावा अपने उन भाइयों को भी पहचान लिया, जिनका जन्म सोमदत्त के मरने के बाद हुआ था। उत्सुकतावश लोगों ने वीर से पूछा कि तुम अपने इन भाइयों को कैसे पहचानते हो। जिनका जन्म तो तुम्हारी मृत्यु के बाद हुआ था। तब वीर ने बताया कि मृत्यु के बाद उसे 9 साल तक कोई शरीर नहीं मिला, तो वह पूर्वजन्म के घर के पास ही प्रेत बनकर पेड़ पर रहने लगा। जब प्यास लगती, तो कुँए से पानी पी लेता और भूख लगने पर रसोई से रोटी खा लेता था। तब प्रेत रूप में ही उसने अपने उन भाइयों को देखा था। यह सब सुनकर सभी लोग हैरान थे। हमारे धार्मिक ग्रंथ तो पुनर्जन्म की बातों को और कर्मों के अनुसार नया जीवन मिलने की बातें तो स्पष्ट रूप से कहते रहे हैं। पुनर्जन्म के हजारों उदाहरण सामने आए हैं। गीता और गरुड़ पुराण में इस विषय पर काफी कुछ कहा गया है।

महाभारत की एक घटना भी पुनर्जन्म की अवधारणा को मजबूत करता है। यह घटना महाभारत के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति भीष्म पितामह की है, जिन्हें अपने 6 जन्मों की बातें याद थी। एक जानकारी के मुताबिक पलक झपकने से तीन गुना तेज याद आती है। घटनाओं के बारे में भी खबर पढ़ने को आयी थी। स्मृतियाँ सिमेटिक भाषा के तथ्य समझने पर व एपिसोडिक व्यक्ति विशेष के लिए खास महत्व रखती है। रटंत क्रिया से भी याददाश्त मजबूत होती है। चिंतनीय प्रश्न यह उठता है कि क्या इंसान के मरने के बाद स्मृतियाँ अमर होती हैं? पुनर्जन्म के उदाहरण में तो स्मृतियाँ पहचान का आधार बनाती कई घटनाएँ पढ़ने, सुनने में आती रही हैं। कई लोगों को पिछले जन्म की घटनाएँ याद रहती है। छोटी उम्र में पुनर्जन्म की बातें ज्यादा याद रहती। फिर बड़े होने पर कम हो जाती है। पुनर्जन्म पर कई फिल्में, सीरियल भी बने हैं।

पिछले वर्ष सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे हरियाणा का ढाई साल का बालक अपने पूर्वजन्म की घटना, जिसके कारण वो रिश्तेदारों, जगहों को पहचानता है। सवाल उठता है कि क्या इंसान के मरने के बाद स्मृति अमर होती है? पुनर्जन्म में याददाश्त भी एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश क्या होती होगी? ये अभी तक विस्तृत रूप से मालूम नहीं है। पुनर्जन्म के संबंध में विचारक, लेखक आर्य द्वारा कुछ अलग विचार का अपना यह मत दिया गया कि ''जिस प्रकार इस जन्म में मनुष्य होकर हम शुभ व अशुभ कर्म करते हैं, इसी प्रकार पूर्वजन्म में भी हमारी आत्मा ने कर्म किये थे। उन कर्मों का शुभ व अशुभ फल हमें भोगना होता है। कुछ क्रियमाण कर्मों का फल हमें कर्म करने के साथ या कुछ समय बाद इसी जन्म में मिल जाता है। जिन कर्मों का फल जीवात्मा को पूर्वजन्म में नहीं मिल पाता, उस कर्म–समुच्चय को प्रारब्ध कहते हैं। उन कर्मों का फल भोगने के लिए ही हमारा यह जन्म हुआ व होता है। हम प्रत्येक जन्म में अपने पूर्व किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए ईश्वर के द्वारा उपयुक्त योनि में जन्म लेते रहेंगे और अपने कर्मों का फल भोगते रहेंगे। इसी को कर्म–फल व्यवस्था कहा जाता है।

मनुष्य को पूर्वजन्मों की स्मृति क्यों नहीं होती? इसका उत्तर यह है कि हमें तो इस जन्म के भी किये हुए अधिकांश कर्मों का ज्ञान व स्मृति नहीं होती है। हमने कल, परसों, उससे पूर्व के दिनों में क्या भोजन किया था? कौन–कौन से वस्त्र किस–किस दिन पहने थे, किन–किन व्यक्तियों से मिले थे, कहाँ–कहाँ गये थे, उन सब बातों को याद नहीं रख पाते। दो व्यक्ति आपस में बातें करते हैं या एक व्यक्ति उपदेश करता है, उसे यदि कहा जाये कि आपने आधा घंटा जो उपदेश किया है, जिसे हमने रिकॉर्ड किया है, उन्हीं शब्दों व वाक्यों को क्रम से पुनः दोहरा दीजिये, तो वह ऐसा नहीं कर सकता। इसका कारण मनुष्य की स्मृति का समय के साथ–साथ कुछ भाग को भूलना है। दो जन्मों के बीच एक मृत्यु आती है, जिसमें हमारा पुराना शरीर नष्ट हो जाता है। नया शरीर मिलता है। हमारा भौतिक मन व अन्य इन्द्रिय आदि इस जन्म में नये प्राप्त होते हैं। किसी की मृत्यु होने पर यह आवश्यक नहीं कि मृत मनुष्य का जन्म मनुष्य–योनि में ही हो। हो सकता है कि हम पूर्वजन्म में मनुष्य रहे हों या हो सकता है कि हम किसी अन्य योनि में रहे हों। इस कारण से विस्मृति का होना सामान्य बात है। यदि हम एक बच्चे को देखें जो कुछ दिन पूर्व जन्मा है, तो हम पाते हैं कि वह अपनी माता के दुग्ध का स्तनपान करना जानता है। यह ज्ञान व अनुभव उसे इस जन्म में तो होता नहीं, यह ज्ञान व अनुभव उसके अनेक पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण से होता है। बच्चा सोते हुए स्वप्न देखता है और उसमें कभी वह मुस्कराता है और कभी चिन्ता व दुःख के भाव उसके चेहरे पर देखने को मिलते हैं। इसका कारण भी उसकी पुरानी स्मृतियाँ ही होती हैं। एक परिवार में दो जुड़वा बच्चे उत्पन्न होते हैं, उनमें से एक तीव्र बुद्धिवाला होता है, तो दूसरा मन्द बुद्धि वाला। इसका कारण भी उनके पूर्वजन्म के संस्कार हैं। यदि पूर्वजन्म न होता, तो दो सगे जुड़वा भाइयों में यह अन्तर न होता; क्योंकि दोनों के माता–पिता, परिवेश व परवरिश एक समान है, इसलिए अन्तर नहीं होना चाहिये। यह भी हम मनुष्यों व इतर प्राणियों के पूर्वजन्म का पुनर्जन्म होने का प्रमाण है। मनुष्य का मन ऐसा है, जिसे एक समय में एक ही ज्ञान होता है। हम हर समय वर्तमान की बातों के बारे में सोचते–विचारते रहते हैं। इस कारण पुरानी स्मृतियाँ विस्मृत रहती हैं। यह भी पूर्वजन्म की स्मृतियों के न होने का कारण है। विज्ञान का नियम है कि संसार में मनुष्य कोई नया पदार्थ नहीं बना सकता। दर्शन की भाषा में अभाव से भाव तथा भाव का अभाव नहीं होता। संसार में जो चीज बनी है व बनाई जाती है, उसका कोई न कोई उपादान कारण अवश्य होता है। रोटी आटे से बनती हैं। बिना आटे की रोटी नहीं बनाई जा सकती। हम भोजन करते हैं। उसमें अनेक पदार्थ होते हैं। उन पदार्थों व बनानेवाले के बिना वह भोजन तैयार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार

माता के शरीर से सृष्टि के नियमों के अनुसार जो संतान जन्म लेती है। वह जीवात्मा व शरीर में प्रयुक्त पदार्थों के अभाव से उत्पन्न नहीं होती, अपितु उस आत्मा व उसके शरीर के पदार्थों का पहले से अस्तित्व होता है। वह आत्मा पूर्वजन्म में कहीं मृत्यु को प्राप्त होती है, उसके बाद उसका पुनर्जन्म ही इस जन्म में होता है। संसार में जितने लोगों को भी हम जन्म लेते हुए देखते हैं। वह सब पूर्वजन्म की जीवात्माओं की मृत्यु होने के बाद जन्म लेते हैं।

पुनर्जन्म का उदाहरण हम पुराने वर्ष के अन्त व नये वर्ष के आरम्भ के आधार पर भी दे सकते हैं। ''एक वर्ष बारह महीनों का होता है। 31 दिसम्बर को वर्ष समाप्त होता है। उसके अगले ही दिन नया वर्ष आरम्भ होता है और तिथि 1 जनवरी कही जाती है। इसे हम पूर्व वर्ष का मरना व अंत होना तथा उसी का नये वर्ष के रूप में जन्म कह सकते हैं। इसी प्रकार से हम सप्ताह के सात दिनों व वारों–रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार आदि का उदाहरण भी ले सकते हैं। शनिवार को सप्ताह समाप्त हो जाता है और वही सप्ताह पुनः रविवार से आरम्भ हो जाता है। यह भी तो एक प्रकार से पूर्वसप्ताह का पुनर्जन्म ही है। प्रलय काल तक यह व्यवस्था मृत्यु और जन्म का चक्र चलता रहेगा। मृतक जीवात्मा गर्भावस्था तथा जन्म लेकर शैशव, किशोर, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्धावस्था को प्राप्त होती है और शरीर के दुर्बल व रोगी होने पर पुराने वस्त्रों की भाँति ईश्वर की प्रेरणा से अपने शरीर को छोड़कर चली जाती है। इस जन्म लेनेवाली जीवात्मा को ईश्वर उसके कर्मानुसार नया शरीर व जन्म देकर पुनः कर्म भोग व कर्म करने के लिए पास व दूरस्थ स्थान पर जन्म देते हैं। सिद्ध योगी अपने पूर्वजन्मों को देख व जान सकते हैं। ऐसा योग–दर्शन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है।''

आज भी कई बच्चे ऐसे जिनकी जनरल नॉलेज की मेमोरी बहुत ही तगड़ी है और इसी प्रतिभा के कारण गिनीज बुक रिकार्ड में भी उनका नाम दर्ज है। ज्योतिष और विज्ञान भी स्मृति अमर और शरीर खत्म होने की बात कहता है। पुनर्जन्म में मेमोरी ट्रांसफर भी शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश होती होगी। इसी प्रकार से मनुष्य के शरीर में हवा लगना यानि भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि का लगना, जिसको ओझा, जानकार द्वारा उतारा भी जाता है। कोई इसे मानसिक रोग मानता है, किंतु बाधा पीड़ित इंसान की बाधा होने से बोली भी बदल जाती है। जिसे उसे कभी भी पढ़ी बोली, सुनी नहीं होती है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिले है। दाह संस्कार के समय कपाल क्रिया किये जाने के प्रति क्या धारणा के पीछे क्या पुनर्जन्म, मैमोरी का आधार है? ये अभी तक विस्तृत रूप से मालूम नहीं है। प्राचीन ग्रंथों, पुराणों में अमरता प्राप्त का उदाहरण भी पढ़ने को मिलते हैं। मस्तिष्क की क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं के गूढ़ रहस्य को सुलझाने में और भी शोध की आवश्यकता है। ताकि पुनर्जन्म से स्मृति कैसे अमर बनी रहती ज्ञात हो सके।

लघुकथा

आधुनिक संध्या

कशिश कुमावत
नीमकाथाना, जिला–सीकर, राजस्थान
मो. 8107311797

प्रकृति का सौंदर्य अद्‌भुत और अतुलनीय है। प्रकृति का प्रत्येक दृश्य अपने सौंदर्य की छटा बिखेरे रहता हैं। इसी सौंदर्य को चार चाँद लगाती है–संध्या। जो प्रकृति के सौंदर्य को तो बढ़ाती ही है, लेकिन उसके साथ–साथ वह अपने घरौंदों से दूर निकले मजदूरों और थके हारे लोगों को उनके घर तक लाती है और उनके मन में व्याप्त निराशा को आगे आनेवाले सुखद व आनंदमय जीवन की आशा से प्रेरित करती है; लेकिन जब से ये आधुनिकता का दौर आया है, तब से संध्या में कुछ बदलाव–सा नजर आने लगा है। आधुनिकता से पहले की संध्या कुछ और थी और इसके बाद की संध्या कुछ और है। परिवर्तन तो हुआ है; लेकिन संध्या में भी उसके भौतिक परिदृश्य में भी; क्योंकि जब से प्रकृति का सृजन हुआ है, तब से संध्या उसी प्रकार आती है, जैसे पहले आ रही थीं; लेकिन बदलाव उसके भौतिक वातावरण में हुआ है।

इस दौर से पहले संध्या गोधूलि बेला के पीछे–पीछे आती और एक शीतल व मधुर वातावरण के साथ चारों ओर अपनी रस भरी महक को फैला देती। सूर्य भी अपने घर लौट जाता और जाते–जाते आसमान में हल्के–हल्के बादलों को चीरती हुई सूर्य की किरणें उन्हें इस प्रकार भिगो देती, मानों जैसे आसमान में केसर का बाग लगा हो। प्राचीन काल की संध्या का दृश्य इतना मनोहर और सुखप्रद था कि उसके जैसा वातावरण बन पाना इस समय नामुमकिन–सा लगता है। उस समय गोधूलि बेला का समय मन को प्रफुल्लित और आनंदित कर देनेवाला था। जब श्रीकृष्ण अपने नन्हें–नन्हें हाथों से गायों को चरा कर लाते थे, तो गायों के पैरों से उड़नेवाली धूल में इतनी महक थी कि वो सारे वातावरण को महका देती थी। मंदिर के शिखर के कलश पर पड़नेवाली सूर्य किरणें उसे स्वर्ण कलश के समान दिखलाती थी; लेकिन आज की आधुनिक संध्या भी इस दौर के साथ बदल गई।

अब की शाम गोधूलि बेला के साथ नहीं, बल्कि मोटर वाहनों के साथ आती है तथा कुछ मैलापन अपने साथ लाती हुई अंधेरे में गुम हो जाती है। गोधूलि बेला के समय धूल–मिट्टी तो नहीं उड़ती, पर मोटर वाहनों से काली धुआँ जरूर निकलती है, जो लोगों के भीतर जम गई है और लोगों में अपराधिक प्रवृत्ति को जन्म देती है। संध्या भी अंधेरी रात के तले कुचल जाती है और इसी अंधेरी रात्रि में असामाजिक कार्यों का मेला लगता है। तारे भी उस संध्या की मायूसी पर शौक प्रकट करते हुए धीरे–धीरे टिमटिमाते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे वे संध्या की पीड़ा को कम करने का प्रयास कर रहे हैं। बदलते दौर के साथ प्रकृति में भी बदलाव आया है और बदलाव मनुष्य ने अपने स्वार्थ के कारण किया है; क्योंकि उनकी यह धारणा है कि 'स्वार्थ ही विकास है।' यह स्वार्थ हमारे परिवेश में ऐसा बदलाव लाया है कि गाँव में सभी को शाम के समय गली नुक्कड़ में भी बैठकर अपने अच्छे–बुरे के किस्से सुनना और सुनाना, मंदिरों में होनेवाली संध्या आरती का शोरगुल अब इतना उत्तेजित व मदमस्त नहीं कर पाता, जितना उसे करना चाहिए। अब लोगों के पास समय कम और काम ज्यादा होने से प्रकृति के सौंदर्य को कुछ क्षण निहारने और उससे अपने तनाव को दूर करने का वक्त ही नहीं है। वह समाज से दूर रहकर अपनी जिंदगी की दौड़ में अव्वल आना चाहता है। इसलिए वह पूरे दिन कार्यस्थल से घर तक का सफर करता है और अगले दिन की शुरुआत भी इसी तरह करता है। इसीलिए प्रकृति ने भी अपना रुख बदल लिया, उसमें भी मायूसी रहने लगी।

शोधपरक
वसंती कविता

इस कठ–करेज़ समय में वसंत

सुभाषचन्द्र झा
बिहार प्रशासनिक सेवा
पूर्व विशेष सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग
मो0–9431208428

बेहद सपाट बेलौस
क्रूर कठोर कर्कश
भयाक्रांत और अर्थहीन
निरंतर निरुत्तर एकाकी होते
निष्ठुर और परजीवी
इस कठ–करेज़ समय में
कहीं कोई वसंत नहीं है

विपुला धरती की उर्वरक कोख़ में
बंज़र कंक्रीट का विषैला भ्रूण है
खेतों से उड़ रही है रेह
बहती नदी उतर रही है रेत में
चतुर्दिक पसरा है दमघोंटू धुआँ
हरी–भरी शाखों पे फैली है धूल
संवेदनाएँ रुग्ण लहूलुहान
आस्था क्षत–विक्षत अपाहिज
अपनत्व अतीत का आईना
उम्मीद प्रदूषित कचरे के छूटे
फ़ालतू हिस्से की तरह
निर्जन कोने में दुबकी–सहमी
जो आज नहीं तो कल
बुहारकर फ़ेंक दी जायेगी
अलसी के फूल जैसा मासूम प्रेम
काला कलूटा मटमैला होकर
मतलब की ओट में शातिर–सा
घात लगाए छिपा है
झपट्टा मार घायल करने हेतु
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज़ समय में
हताश ठहरी महुवाई गंध
ठूँठ दरख़्त के नीचे
छायाहीन अंधेरे में विलाप कर रही है
एक लंबे संयुक्त परिवार के विघटन की तरह
मिट्टी फोड़कर उगने का दर्द समेटे
नंगेपन पर झर चुकने के बाद
नमक के ढेले–सा गलकर
पतझड़ में तब्दील है
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज़ समय में
चोरी–चुपके बग़ैर आहट बेमन
उतरता है वसंत समय पूर्व
पेड़ की टहनियों से धरती पर
चीखों से भरे मातमी सन्नाटे में
भयभीत हवाओं में बेसुरा संगीत भरता
जहाँ वीरान है पक्षियों का रैन–बसेरा
किसी अचरज़, कुतूहल नहीं
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज़ समय में
उत्तरोत्तर पत्रहीन होते सूखते–कटते पेड़ों में
जितने पत्ते हैं, फूल–फल हैं
उतनी ही दग्ध आशाएँ
जितनी गहरी कल्पवृक्ष की छाया
उतनी ही ग़हराई तक उसे उखड़ना
जिसके क़द की जितनी ऊँचाई
उस पे उतने ही ऊँचे आघात–प्रतिघात
टेढ़े–मेढ़े फलहीन पेड़ शान से खड़े–मुस्कुराते
सीधे–सादे–सरल पेड़ काट डाले जाते हैं
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज़ समय में
अपनों से बिछोह के पथराए जीवन में
पाषाण पुतलियों के धँसे कोटर में
बाट जोहती पथरायी माँ की ममताभरी आँखों में
करुणा का कायर भावनाशून्य मर्म लिए
छटपटा कर वसंत पत्थर हो गया है
लगाव की कोमल दीवारों फ़ाँदकर
पलाश के फूलों में छिप जाता है
और पृथ्वी तनहा हो जाती है
ऐसे में दस्तक़ देने से पहले ही
किसी लुप्तप्राय आदिम प्रजाति–सा
चुपचाप ओझल हो जाता है वसंत
कहीं कोई वसंत नहीं है

आया करता था वसंत कभी
पलेटोनिक प्रेम में अनकहा–सा
अमृत जलप्रवाह लिए उद्याम गंगा–सा
फ़ैले सरसों के ख़ेत की खुशबू की तरह
आगन्तुक की सुदीर्घ प्रतीक्षा की तरह
मधुर मादक अद्भुत प्रेम–स्मृति की तरह
जैसे अरहर की दाल में लहसुन की बघार
जैसे धनिया और पुदीना की मदमाती सुगंध
जैसे मक्के–मरुआ की मोटी सोंधी रोटी पर
सरसों अदरक हरी मिर्च की तीखी चटनी
किन्तु इस कठ–करेज़ समय में
एक अभुक्त तृष्णा मं आक्रांत
ढूँढ़ता है हवाओं का साक्ष्य
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज
मूक, बधिर, अंधे समय में
कोई सलवटें, परतें, दरारें
सुदूर तक नज़र नहीं आतीं
पलायन की पगडंडी तक नहीं
संग–साथ ठिठका–दुबका
जहरीली होती मन की आवोहवा
रिश्तों में छल–फ़रेब, कपट–धोखे
साँस लेना तक खुद से जद्दोजहद
रस्साकसी–सा सतत खींचतान
परिचय व फ़ासले की डगर पर
उतरने से कतराता है वसंत
बीमार मानसिकता के अंधकार में
जहाँ दुपहरी में स्याह अंधेरा है
भीतर भरा है अकुलाया शोर
सिकुड़ती नजदीकियाँ बढ़ती दूरियों के
घृणित हिंसक स्वार्थी माहौल में
हर अभिशप्त काले कालखण्ड में
वसंत कुछ और नहीं
बस, एक प्रश्नचिह्न–मात्र है
अंतर को मथकर उमड़ते हुए
दो जून रोटी के लिए संघर्षरत
गरीबों के कटु–तिक्त अनुभव पर
टीस रही दीवारों, टपकती छतों के अंदर
झोपड़ियों के भीतर दूध को बिलखते बच्चों के लिए
अब नहीं झाँकता है वसंत
कहीं कोई वसंत नहीं है

इस कठ–करेज़ समय में
दादी–नानी के एक डंडेवाले चश्मे–सा है वसंत
अभावों की लिपि में आबद्ध
एक मनहूस शोक–गीत है वसंत
जहाँ थम गई है ईख की सरसराहट
गायब है दरख़्तों से टपकती ओस
बाल्टी में दुहे दूध पर नहीं है झाग का नर्तन
मंजरी की गंध में भारीपन व्याप्त है
अलग है गुंज़ार भौरों की अलस, श्लथ, उदास
क्लांत पिक रह–रह तड़पकर कूकता है

दीये की उमड़ती लौ में विदा ले रहा भोर
कहीं कोई वसंत नहीं है!

इस कठ–करेज़ धुंधले वक़्त में
जीने से अलग है ज़िन्दगी
गाने से बहुत दूर है संगीत
लहरों से जुदा है समन्दर
सभी फूल जूठे, बासी हैं
बेमौसम गंदी आवारा हवाओं से
पाँव किसी के जमीं पे नहीं
अवांछित होते एक–दूजे के लिए लोग
किसी के होने, आने जाने
जीने–मरने से किसी को फर्क नहीं
जैसे किसी हिम शिला बीच
दब गयी हो तितली
जैसे पायल की सरगम सुनाती झंकार
बहुत पास आते–आते थम चुकी हो
हादसे की तरह होती जिन्दगी में
कहीं कोई वसंत नहीं है

यह कठ–करेज़ समय
कितना वसंत विरोधी हो गया है
आश्रम–आधार ही निर्मूल हो गये
वातानुकूलित गाड़ी में आज
वृक्षों की छाँव की दरकार नहीं
वसंत आज मोबाईलों, कंप्यूटरों में आबाद है
मधुमास नहीं मधुमेह है
सृष्टि पर मँडरा रही
समाप्त हो जाने की साया तले
किसे वसंत की चिंता है
ये वसंत है?
'चारूहीन वसन्ते'
वसंत खो गया है!
मौसम बहुत तल्ख़ है
और लोग सख़्त, उदास
उबलते लावे की मानिन्द
वसंत के लिए लड़ाई पर हैं
सब बेपहचान
हवा भी अंधी
कोई लिखता है वसंत
और घायल होकर नष्ट हो जाता है वसंत

इस कठ–करेज़ समय में
अपने आप नहीं आता वसंत
उसे लाया जाता है ज़बरन
सहज आनेवाला तो पतझड़ होता है
अपने आप तो पत्ते झरते हैं
नये पत्ते तो वृक्ष का
प्राण–रस पीकर पैदा होते हैं
तुम हो, मैं हूँ, प्रेम है–
क्या ये वसंत हैं?
दो पाटों के बीच में फँसा है वसंत
पाट और आगे खिसक रहे हैं
इससे पहले कि वसंत का पता बदल जाए
रोप देना होगा वसंत को
खुरदरी मिट्टी के बीच

इस कठ–करेज़ समय में
ठंड व भूख से बेहाल जीर्ण काया
बीमार बूढ़ी माता लकुटिया टेकती
माथे के शिकन पे लहू–पसीने की बूँदें लिए
जब अमीर के घरों को डेग से मापती है
और उसे दुत्कार–फटकार मिलता है
तब धरा पर उतरता है वसंत
जब जाड़े से थर–थर काँपती–कराहती
चिथड़े में लिपटी भारत की कोई माता
अन्न के दाने के लिए भीख माँगती
तन ढकने को फटे पुराने कंबल के लिए
फुटपाथ पर आर्त्तनाद करती है–
और लोग अनदेखे–अनसुने गुज़र जाते हैं
बिना पढ़े भिखारिन माँ के चेहरे पर लिखे शब्द–
'बैठी हूँ निराहार, क्या वसंत क्या त्योहार'
और ठीक उसके नीचे लिखा–
'जिन्हें नाज़ है हिन्द पर वो कहाँ है'
तभी वसंत का आगमन होता है!
इस कठ–करेज़ समय में
कहीं कोई वसंत नहीं है।

लघुकथा

बाल कहानी : क्रोध का परिणाम

–प्रिया देवांगन 'प्रियू'
राजिम, जिला–गरियाबंद
छत्तीसगढ़, 7697282458

कुणाल के माता–पिता मध्यम वर्गीय परिवार से थे। कुणाल उनकी इकलौती संतान थी। जिसके कारण वे उसे बहुत लाड़–प्यार करते थे। उसे किसी भी चीज की कमी ना हो, इस बात का पूरा ख्याल रखते थे, उसके कुछ माँगने के पहले ही उसकी हर जरूरत को पूरा कर देते थे। माता–पिता के इसी परवरिश ने कुणाल को जिद्दी बना दिया था। बचपन में उसके शौक आसानी से पूरे हो जाते; लेकिन अब कुणाल बड़ा हो रहा था और वह महँगी चीजों की जिद करने लगता। कभी महँगी साइकिल लेने को कहता, तो कभी वीडियो गेम, कभी घर वालों के साथ घूमने जाता, तो महँगी चॉकलेट खरीदने को कहता। अब उसके माता–पिता उसकी जरूरत को पूरा करने के लिए असमर्थता जताने लगे, जिससे कुणाल चिड़चिड़ा होने लगा। कुणाल अब आठवीं कक्षा में था।

एक दिन उसने अपनी कक्षा के एक साथी रोहन को स्मार्ट वॉच पहने हुए देखा। पहले उसने रोहन से उस वाँच की ख़ासियत पूछी। उसके बाद वह उसे पहनकर देखने की जिद करने लगा। रोहन ने मना कर दिया, जिससे कुणाल आग बबूला हो उठा। वह रोहन से झगड़ने लगा और उसने पास पड़े पत्थर को उठाकर रोहन की वॉच पर दे मारा। रोहन की कीमती घड़ी टूट गई–यह सब वहाँ पर खड़े पी.टी. टीचर ने देखा, तो कुणाल को लेकर प्रिंसिपल के पास गए। प्रिंसिपल ने कुणाल को एक हफ्ते के लिए स्कूल से बाहर कर दिया।

कुणाल का गुस्सा अभी भी सातवें आसमान पर था: उसने घर जाकर पापा से वैसे ही वॉच दिलाने को कहा, जिस पर पापा ने उसे मना कर दिया। मना करते ही कुणाल ने गुस्से में पास रखे हुए पापा के अत्यंत महत्वपूर्ण फाइल को भी फाड़ दिया, जिसमें उनके काम के कई प्रोजेक्ट लिखे हुए थे। अब तो पापा ने उसे खूब डाँटा और अगले दिन उसके स्कूल से उसकी टीसी निकलवा कर बोर्डिंग स्कूल में भर्ती करवा दिया। वहाँ कुणाल अकेला रहने लगा, उसे अपना सारा काम स्वयं करना पढ़ता था और कोई उसे अपना दोस्त भी नहीं बनाना चाहता था। अब धीरे–धीरे कुणाल को अपनी की हुई गलतियों पर पछतावा हो रहा था; लेकिन अब देर हो चुकी थी। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–

''क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशादबुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।''

अर्थात क्रोध से सम्मोह होता है, सम्मोह से स्मृति का विभ्रम होता है। स्मृति के भ्रम से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।''

संस्मरण

उथल–पुथल

अशोक गुजराती
निहारिका ऐब्सोल्यूट सेक्टर 39ए, नवी मुम्बई
मो.–9971744164

यह 1966 की घटना है। मैं तब नागपुर के नेशनल कॉलेज में बी.एससी. फाइनल का छात्र था। रहने का ठिकाना था वाई.एम.सी.ए. होस्टल, जो सीताबर्डी इलाके में है। होस्टल में मेरे पड़ोस के कमरे में डॉ. रामास्वामी रहते थे, जो इंस्टिट्यूट आफ साइंस के व्याख्याता थे। हालाँकि हम उन्हें सर ही सम्बोधित करते, पर उनके मिलनसार स्वभाव के कारण वे मित्रवत् हो गये थे।

हमारी परीक्षाएँ शुरू होने जा रही थीं। पहला पेपर इनऑर्ग्यानिक केमेस्ट्री का था। संयोग से रामास्वामी सर का विषय केमेस्ट्री ही था। उनके दोस्त गाडा सर, जो अन्य कॉलेज में केमेस्ट्री के ही लेक्चरर थे, अक्सर उनसे मिलने आते रहते थे। इसी वजह से उनसे भी थोड़ा–बहुत परिचय था ही।

पहले पेपर से एक दिन पहली शाम को रामास्वामी सर ने मुझे अपने कमरे पर बुलाया, गाडा सर भी मौजूद थे। उन्होंने कहा–अशोक! कल जो तुम्हारा इनऑर्ग्यानिक का पेपर होने वाला है, वह मेरे पास है, उसके आने की पूरी गारंटी है। तुम्हें सौ रुपए में मिल जायेगा। मान लो, यदि वह नहीं आता है, तो तुम्हारे पैसे वापिस मिल जायेंगे।

सर पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं था। यह और बात कि उस वक्त सौ रुपए की कीमत भी बहुत थी, फिर भी मैंने उन्हें सौ रुपए लाकर दे दिये, उन्होंने हाथोंहाथ मुझे इनऑर्ग्यानिक केमेस्ट्री का प्रिंटेड पेपर दे दिया। अब क्या था, मैंने रात में उस पेपर के सारे प्रश्न अच्छी तरह तैयार कर लिये हमारे पेपर्स का समय सुबह सात का था, इसलिए मैंने रात–भर जागकर पढ़ाई करने और पेपर के बाद खाना खाकर लम्बी तानने की दिनचर्या तय कर ली थी। सात बजे इंस्टिट्यूट आफ साइंस के परीक्षा कक्ष में पेपर मिलने से पूर्व दिल धड़धड़ा रहा था। पेपर बाँटे गये। पेपर देखते ही मेरी बाँछे खिल गयीं। वही था, जो गाडा सर ने मुझे दिया था एकदम आराम से वांछित छह सवाल छुड़ाये उम्मीद थी कि एकदम आराम से कम–से–कम चालीस मार्क्स कहीं गये नहीं।

गाडा सर ने कहा था कि अगला ऑर्ग्यानिक केमेस्ट्री का पेपर, जो दूसरे ही दिन था, मुझे रात में आठ बजे मेरे कमरे पर मिल जायेगा। पहला पेपर खत्म होने के पश्चात् हम चार दोस्तनुमा सहपाठी जब बाहर मिले, मैंने अपनी सफलता की कहानी विस्तार से उनको बता दी। उस दिन का पेपर न मिलने पर वे दुखी हुए, मुझे न बताने के लिए कोसा और शाम को सात बजे मेरे कमरे पर पहुँचने का व्यग्र होकर वादा किया।

वे आये, मेरे कमरे के सामने जो हरा–भरा मैदान था, वहाँ हम पाँचों बैठकर यूँ बतकही में डूब गये। (पेपर जो मिलने वाला था), ज्यों हमारी परीक्षा समाप्त हो गयी हो, वैसे पेपर लेकर आनेवाले की प्रतीक्षा में बीच–बीच में बेचैन भी हो जाते, आखिर रात के दस बज गये, सब निराश होकर अपने–अपने घर के लिए निकल गये कि छोड़ो, अब कोई नहीं आयेगा। उनके जाने के बाद मैंने अपना ध्यान पढ़ाई की ओर मोड़ा ही था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया, कोई अजनबी था। वह फुसफुसाया–गाडा सर ने मुझे भेजा है। पेपर लाया हूँ। इस बार तीन सौ देना पड़ेगा।

'तीन सौ?' कल तो सौ ही लिये थे, मैं कुछ शंकित हो उठा–'यह मुझे नहीं मालूम उन्होंने कहा है, पेपर नहीं आया, तो पैसे वापिस मिल जायेंगे।'

कोई विकल्प नहीं था। तीन सौ देकर उसको चलता किया। प्रिंटेड पेपर देखकर जान में जान आयी। सोचा मेरे दोस्त लोगों के नसीब में नहीं था। शायद समय कम था। पेपर में से दस के बजाय केवल छह प्रश्न, जो छुड़ाने होते हैं, तैयार किये। सुबह हो गयी। कैन्टीन में गया। ब्रेड के साथ चाय पी। कमरे पर आकर फिर से छहों उत्तरों पर नजर घुमायी। परीक्षा केन्द्र पास ही था. पैदल निकल गया।

पेपर बाँटे गये। वही था, मोगैम्बो खुश हुआ, लेकिन पल भर के लिए, क्योंकि तभी हमारे कक्ष में केन्द्र संचालक ने हड़बड़ी में प्रवेश किया–कोई पेपर नहीं लिखेगा, सारे प्रश्नपत्र वापिस लिये जायेंगे और आधे घण्टे में दूसरा प्रश्नपत्र दिया जायेगा। मेरी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी भौचक तो सभी थे, ये क्या हुआ...

कोई इलाज भी नहीं था, चुपचाप बैठे रहे। जल्द ही नये प्रश्नपत्र बाँटे गये। पहले दिये पेपर का, जो मुझे रात में मिला था, मात्र दो मार्क का एक सवाल इसमें दोहराया हुआ था। वैसे यह विषय ऑर्ग्यानिक केमेस्ट्री मेरा पसन्दीदा विषय था। मैंने इस पेपर का पहला दस मार्क का प्रॉब्लेम का सवाल, जिस पर मेरी मास्टरी थी, फटाफट छुड़ा लिया। मेरा आत्म–विश्वास बढ़ा यथासंभव अन्य सरल प्रश्न चुनकर उनके उत्तर भी लिखे। यह सारी गड़बड़ी होने के बावजूद मुझे यकीन था कि पचास में से तीस मिल ही जायेंगे।

पता चला कि उस दिन के नागपुर टाइम्स में मुझे देर रात मिला प्रिंटेड पेपर हू–ब–हू सबसे ऊपर छपा था.. सवेरे चाय पीते हुए मैंने टेबिल पर पड़े नागपुर टाइम्स को देखकर अनदेखा किया था कि परीक्षा के दौरान क्या पेपर पढ़ना... अगले ही रोज यूनिवर्सिटी ने हमारा पहला इनऑर्ग्यानिक का हो चुका पेपर भी रद कर दिया। उसे अंतिम परचे के एक दिन बाद नये सिरे से नियत किया गया। मतलब, जो फायदा होना था, वह भी निरस्त हो गया था, जिनको अजीब लग रहा हो कि आध घंटे में नया पेपर कहाँ से आ गया होगा, उनको यूनिवर्सिटी का नियम, जो मुझे प्रश्नपत्र बनाते समय पता चला था, बता दूँ कि एक साथ प्रश्नपत्र के तीन सेट तैयार करने होते हैं, उनमें से कोई एक वार्षिक, कोई दूसरा पूरक परीक्षा के लिए बिना खोले लेने के बाद दोनों प्रिंट करके रखते हैं। पूरक परीक्षा के वक्त तीसरा भी प्रिंट कर रखते हैं, फिर बचा हुआ खारिज कर देते हैं।

मेरे लिए संतोष की बात यही थी कि मार्कशीट आने पर मालूम हुआ कि जो परीक्षा–कक्ष में ऐन मौके पर बदला गया था, उस ऑर्ग्यानिक केमेस्ट्री के पेपर में मुझे पचास में से उन्नतीस गुण मिले थे। इससे हमें लगा कि गलत का सहारा कभी नहीं लेना चाहिए, जिसे मैं आज भी याद कर काँप उठता हूँ।

जीवनी

आधुनिक रायगढ़ के शिल्पी दानवीर सेठ किरोड़ीमल

बसन्त राघव
पंचवटी नगर, रायगढ़, छत्तीसगढ़
मो.8319939396

वर्तमान रायगढ़ छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक राजधानी है, औद्योगिक नगरी के रूप में इसका तेजी से विकास हो रहा है। छत्तीसगढ़ के पूर्वी सीमान्त पर हावड़ा–बाम्बे रेल लाइन का यह जीवन्त नगर है। इसका एक दिलचस्प इतिहास है–राजा चक्रधर सिंह और दानवीर किरोड़ीमल लोहारीवाला के नाम पर इसे विश्वविख्यात ख्याति मिली हैं। रायगढ़ राज्य की स्थापना सन् 1668 के आसपास महाराष्ट्र चान्दा से विस्थापित राजा मदन सिंह ने की थी। पहले बुनगा बाद में राजा ने नवागढ़ी में 'सतखंडा' की नींव डाली और राज्य को विकसित किया। बीसवीं सदी के शुरू में राजा चक्रधर सिंह ने उसे साहित्य और संगीत के लिए विख्यात किया। रायगढ़ नगर की प्रसिद्धि में एक और अमिट नाम है–दानवीर सेठ किरोड़ीमल लोहारीवाले का, सच्चे अर्थों में वे आधुनिक रायगढ़ नगर के शिल्पी हैं। अगर उनके योगदान को हटाकर देखें, तो रायगढ़ एक व्यावसायिक सामान्य स्तर का शहर ही है। हालाँकि वर्तमान में वह एक औद्योगिक नगरी के रूप में तेजी से विकसित हो रहा है।

सेठ किरोड़ीमल ने यहाँ पहली बार अधिकाधिक मात्रा में स्कूल, कॉलेज, पुस्तकालय, चिकित्सालय, बालमंदिर और बालसदन, भव्य मंदिर, धर्मशाला, भरत कूप, कुआँ–बावड़ी और कॉलोनियों का निर्माण कराया, इतना ही नहीं रायगढ़ शहर को औद्योगिक नगर के रूप में पहचान दिलानेवाला प्रदेश का प्रथम जूटमिल रायगढ़ में उन्होंने ही स्थापित किया। सेठ किरोड़ीमल ने अपने बुद्धि चातुर्य से यहाँ का माल कलकत्ता को भेजा। कठिन संघर्ष, व्यावसायिक बुद्धि के कारण उन्होंने अकूत सम्पत्ति प्राप्त की और अन्त में उसे जनता के हित में ही, सेवा–कार्यों में लगा दिया। उनकी यह अप्रतिम सेवा उन्हें महान् दानवीरों की श्रेणी में रख दिया, उनकी सेवाएँ क्या कभी भुलाई जा सकती है?

राजशाही खत्म होने के बाद सेठ किरोड़ीमल ने ही औद्योगिक नगर के रूप में रायगढ़ नगर की नींव रखी। सेठ किरोड़ीमल ऐसे महादानी, समाजसेवक, विलक्षण व्यवसायी कौन थे, कहाँ से आए, उनका जन्म कहाँ हुआ, यह जानना बहुत दिलचस्प है। सेठ जी का जन्म हिसार (हरियाणा) के एक मध्यम वर्गीय परिवार में 15 जनवरी, 1882 को हुआ था। कम आयु में ही उनमें कुछ कर गुजरने की ख्वाहिश जागी। वे कलकत्ता आकर छोटे–मोटे व्यापार करते थे, जहाँ उनके भाग्य का सितारा चमका। प्रो. आर. के. पटेल के शब्दों में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1936 से 1942 तक सेठ किरोड़ीमलजी ने जापान एवं मित्र राष्ट्रों को युद्ध की विभीषिका से कराहती जनता के लिए भारी मात्रा में खाद्यान्न दिया। उनकी दृष्टि में मानवता की सेवा ही सर्वोपरि थी। उनके हृदय में युद्ध के पक्ष–विपक्ष का भेद नहीं था। मेरे पापा डॉ. बलदेव जब प्रोफेसर के. तिवारी के आग्रह पर सेठ किरोड़ीमल के ऊपर एक लम्बा लेख रहे थे, तब पं. लोचन प्रसाद पांडेय के बन्धु पं. मुरलीधर पांडेय ने उन्हें बतलाया था–'भारत स्वतंत्र हुआ, जब अंग्रेज भारत छोड़कर विदेश जा रहे थे, तब हुकमरानों को कलकत्ता में एक यादगार पार्टी दी गयी थी, उसके प्रबन्धक थे श्री किरोड़ीमल, इससे प्रसन्न होकर अधिकारियों ने उन्हें कम्पनी के व्यवसाय में कुछ परसेंट का लाभ तय कर दिया था, इससे उन्होंने प्रभूत राशि कमाई। कठिन संघर्ष, व्यावसायिक तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता ने ही उन्हें रायगढ़ आने के लिए उत्प्रेरित किया था। यहाँ उनका कारोबार बढ़ा और दिन–दूनी रात–चौगुनी कमाई होने लगी। उन्हें यहाँ सब कुछ मिला, पर वे निःसंतान थे, अस्तु अब उनका ध्यान परोपकार की ओर लगा।

सेठ किरोड़ीमल ने परोपकार के लिए अनेक महती कार्य किये हैं। कुछ प्रमुख इस प्रकार है–अविभाज्य मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री रविशंकर शुक्ल एवं सेठ पालूराम धनानिया की प्रेरणा से उन्होंने रायगढ़ में 7 मार्च, 1946 को गौरीशंकर मंदिर का शिलान्यास पं. शुक्ल के हाथों करवाया था। देश का प्रसिद्ध झूला–मेला की शुरुआत भी उन्होंने गौरीशंकर मंदिर से की थी। यह संगमरमर पत्थर से निर्मित विशाल मंदिर है, इसका शिल्प पूर्णतया राजस्थानी है। इसके गर्भगृह के दीवालों पर सत्यम् के चित्र लोगों को पौराणिक गाथाओं की याद दिलातें है।

30 लाख नगद एवं अपनी अन्य सम्पत्तियों के साथ 13 मई 1946 को तत्कालीन मुख्यमंत्री के हाथों 'सेठ किरोड़ीमल धर्मादा ट्रस्ट' की स्थापना कराई गई। रायगढ़ में ही नहीं, उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों जैसे दिल्ली, मथुरा, मेंहदीपुर, (राजस्थान), भिवानी (हरियाणा), पचमढ़ी, रामपुर, किरोड़ीमल नगर आदि नगरों में अनेक धर्मशाला एवं रैन बसेरा, कॉलेज का निर्माण कराया, जो कि उनके लोकापकारी कार्यों का जीवन्त उदाहरण है, दिल्ली में सेठ किरोड़ीमल ट्रस्ट द्वारा स्थापित 'किरोड़ीमल कॉलेज' में सदी के महानायक अमिताभ बच्चन ने अध्ययन किया था। उनके अलावा मदनलाल खुराना (दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री), कुलभूषण खरबंदा, सतीश कौशिक, गिरिजा प्रसाद कोइराला (नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री), सुशांत सिंह और अश्वनी चाँद जैसे अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति किरोड़ीमल कॉलेज के छात्र रह चुके हैं।

रायगढ़ की बात चलती है, तो मुझे सन् 1975 की याद आती है। उस समय हम लोग धर्मजयगढ़ में रहते थे और वहीं से जन्माष्टमी के दिन झूला–मेला देखने के लिए सपरिवार रायगढ़ आये थे। उस समय पूरा शहर रोशनी से नहाया हुआ लग रहा था (आज भी झूला–मेला में वही हाल रहता है)। झूला–मेला देखने छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के अन्यान्य शहरों से लाखों श्रद्धालु आये हुए थे, आज भी भक्तों की संख्या लाखों में होती है और भीड़ इतनी रहती है कि स्टेशन से लेकर मंदिर तक आने में कहीं भी पाँव रखने की जगह नहीं रहती। मैं दो वर्ष पहले भी रायगढ़ आया था। पापा जी घर में नहीं थे। बीमार हालत में अकेले मम्मी ने मुझे के.जी. हॉस्पिटल रायगढ़ में भर्ती कराया था। यहीं मेरा निःशुल्क इलाज हुआ था। एक जुलाई 1947 को सेठ किरोड़ीमल ने महात्मा गाँधी नेत्र चिकित्सालय का लोकार्पण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन से करवाया था (वे पं. मुकुटधर पांडेय के मित्रों में थे) नेत्र चिकित्सालय के समीप ही अशर्फी देवी महिला चिकित्सालय है, सेठ किरोड़ीमल जी ने अपनी पत्नी के नाम से इसका निर्माण कराया था। इसका उद्घाटन भी पं. रविशंकर शुक्ल ने ही किया था। यह आधुनिक एक्सरे मशीनों से सर्व–सुविधायुक्त अस्पताल था। यहाँ निःशुल्क इलाज किया जाता है। पहले अस्पताल का सारा खर्च ट्रस्ट द्वारा उठाया जाता था।

शिक्षा के क्षेत्र में सेठ जी अत्यंत उदार एवं जागरूक थे। मेरे जीवन की एक घटना मुझे याद है, वह आदर्श बालमंदिर से जुड़ा हुआ है, नवांकुरों की शिक्षा के लिए इसे भी सेठ जी ने ही शुरू किया था। इसके एक प्रखंड में कथक नृत्य (ताडंव पक्ष) की शिक्षा पं. फिरतू महाराज यहाँ की बालिकाओं को वर्षों तक देते रहे। सन् 1975–76 की बात है, पापा जी जब स्थानांतरण में कोड़ातराई आए, तब उन्होंने अपना निवास रायगढ़ में रखा। उन्होंने स्कूल में

दाखिला के लिए मुझे इसी बालमंदिर में लाये, वहाँ के वयोवृद्ध बोड़े, गुरुजी मेरा गठीला शरीर देखते ही, बिना कुछ जवाब सवाल के कह दिया, यह लड़का कमजोर है, यहाँ नहीं ले सकते, पिताजी दुखी हुए। बोले–बिना सवाल–जवाब के जाँचे– परखे आपने ऐसा कैसे कह दिया? क्या आपको पहलवानी कराना है। स्काउट मास्टर के नाम से प्रसिद्ध बोड़े सर के मन में चाहे जो रहा हो, जो भी परिस्थिति रही हो, उन्होंने मुझे भर्ती नहीं लिया। मुझे सरस्वती शिशु मंदिर में दाखिला मिला। नटवर हाईस्कूल से मैंने मैट्रिक और किरोड़ीमल विज्ञान कला महाविद्यालय के पी.जी. बिल्डिंग से अपने बड़े भाई शरद के साथ हिन्दी में एम. ए तक की डिग्री ली। इस तरह मैं इस शहर से जुड़ा रहा।

नटवर स्कूल रायगढ़ के सामने खेल का बड़ा मैदान था, जो अब कई प्रभावशाली लोगों द्वारा काट–छाँटकर छोटा कर दिया गया है। खैर, यह स्कूल और मैदान... पतंगबाजी, जालीदार भवन भी सेठ जी की ही कृपा का फल है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य हो कि रायगढ़ के गणेश–उत्सव में बाहर से आनेवाले कला साधकों को नटवर स्कूल में ठहराया जाता था। राजा भूपदेवसिंह ने सन् 1906 में अपने बड़े बेटे नटवर सिंह के नाम पर इस स्कूल की स्थापना की थी। सन् 1954 में सेठ किरोड़ीमल ने इस स्कूल भवन का जीर्णोद्धार कराया था और इसे भव्यता प्रदान की। तब से इसे किरोड़ीमल नटवर हाईस्कूल के नाम से जाना जाता है।

रायगढ़ के जिस कोने पर चले जाइये, उनके यादगार के रूप में कई इमारतें सेठ किरोड़ीमल के नाम पर ही मिलेगी, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, बिहार और उड़ीसा में तथा अन्यान्य जगहों पर सेठ किरोड़ीमल के नाम पर भी ईमारतें खड़ी हैं, यदि पॉलिटेक्निक कॉलेज रायगढ़ की चर्चा न की जाय, तो इस लेख का उद्देश्य अधूरा रह जायेगा। क्योंकि सेठ किरोड़ीमल ने रायगढ़ में मध्यप्रदेश के प्रथम पॉलिटेक्निक कॉलेज का निर्माण कराया था, जो कि आकार में किसी छोटे–मोटे विश्वविद्यालय का स्मरण कराता है। पॉलिटेक्निक कॉलेज का शिलान्यास सन् 1955 में म. प्र. के तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल ने किया था एवं उद्घाटन देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ.राजेंद्र प्रसाद ने 1956 में किया था। समारोह की अध्यक्षता प्रख्यात साहित्यकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता पं. लोचन प्रसाद पांडेय ने की थी। अविभाजित मध्यप्रदेश के दौरान कुल दो इंजीनियरिंग कालेज (रायपुर और बिलासपुर) और कुल तीन पॉलिटेक्निक थे, जिसमें किरोड़ीमल शासकीय पॉलिटेक्निक कॉलेज रायगढ़ का नाम प्रमुख था... रायपुर और बिलासपुर–इन दोनों कॉलेजों में एडमिशन नहीं हो पानेवाले छात्रों के सामने रायगढ़ का पॉलिटेक्निक कालेज ही विकल्प में बचता था। रायगढ़ के अतिरिक्त अन्य दो पॉलिटेक्निक कॉलेज धमतरी और दुर्ग में भी था; लेकिन दोनों प्राइवेट थे और यह भी सच था कि रायगढ़ पॉलिटेक्निक कॉलेज की बात ही कुछ और थी। इसकी भव्यता आते–जाते लोगों को अपनी ओर खींचती थी। रामगढ़ पॉलिटेक्निक कॉलेज के उद्घाटन के लिए किरोड़ीमल अपने मुनीम को लेकर जवाहरलाल नेहरू के यहाँ गये थे। जवाहरलाल नेहरू के स्टाफ ने उन्हें भाव नहीं दिया। किरोड़ीमल ने इसे अन्यथा नहीं लिया; लेकिन मुनीम को यह सेठ जी का अपमान लगा। मुनीम ने सेठ जी को मारवाड़ी में कहा–''इब तो उद्घाटन राष्ट्रपति सेती होणा चईये।''

और दोनों राष्ट्रपति को आमंत्रित करने राष्ट्रपति भवन चले गये। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी स्पेशल ट्रेन से रायगढ़ आये थे और सेठ किरोड़ीमल ने महामहिम राजेंद्र प्रसाद जी से सोने की कैंची से फीता कटवाया था। सेठ किरोड़ीमल के संदर्भ में भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने उद्बोधन भाषण में कहा था–देश को श्री किरोड़ीमल लुहारीवाला सदृश मानव सेवा में आस्था रखनेवाले लोगों की आवश्यकता है, जो संख्या में भले ही कम हों, पर सामने आकर यदि ऐसा अनुकरणीय कार्य करें, तो राष्ट्र का कल्याण होगा। किरोड़ीमल पॉलिटेक्निक कॉलेज के पीछे दो बड़े हॉस्टल भी हैं। एक विश्वेश्वरैरया हॉस्टल और उसके पीछे तिलक हॉस्टल, जिन्हें बनाने में आज करोड़ों रुपए लगेंगे। उस समय यहाँ लगभग 600 छात्र विद्याध्ययन हेतु रहा करते थे; लेकिन आज उसका उपयोग नहीं हो पा रहा है, खाली पड़ा हुआ है। जनहित में इसका उपयोग जरूरी है। वर्तमान में वहाँ सोलह–सत्रह सौ बच्चे पढ़ रहे हैं। इस लिहाज से छात्रों के हित में दोनों हॉस्टलों को काम में लिया जाना चाहिए।

छत्तीसगढ़–मध्यप्रदेश का पोलिटेक्निक कॉलेज होने की वजह से यहाँ अब तक लाखों इंजीनियर तैयार हो चुके हैं। यहाँ विश्व प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डॉ. आर. जी. बुलदेव भी प्रथम प्राचार्य के रूप में सेवा दे चुके हैं। इसका परिसर पेड़–पौधों से घिरा हुआ है, रंग–बिरंगे फूल–पौधे इसकी शोभा बढ़ाते हैं। इसके तीन खंड हैं, जिसमें शताधिक कमरे हैं और जहाँ मौखिक, प्रैक्टिकल के साथ प्रायः सभी विषयों की पढ़ाई होती हैं। पिछले पचास पचपन वर्षों में यहाँ लाखों इंजीनियर निकल चुके हैं और देश के विभिन्न भागों में सेठ किरोड़ीमल का नाम राष्ट्रव्यापी कर चुके हैं। इसी बिल्डिंग में एक ऑडिटोरियम भी है, जिसमें शहर तथा दूसरे शहरों के कवि, लेखक एवं कलाकार शिरकत करते हैं।

किरोड़ीमल विज्ञान कला महाविद्यालय एवं पॉलिटेक्निक कॉलेज रायगढ़ में आचार्य विनयमोहन शर्मा, कविवर रामेश्वर शुक्त अंचल जैसे नामी गरामी विद्वान प्राचार्य के रूप में कार्य कर चुके हैं। पं. प्रभुदयाल अग्निहोत्री जैसे संस्कृत के महापंडित भी प्रोफेसरी कर चुके हैं। इस विद्यालय से पं. मुकुटधर पांडेय और जनकवि आनंदी सहाय शुक्ल से भी गहरा सम्पर्क रहा है।

वाकई सेठ किरोड़ीमल ने रायगढ़ को बसाया, सजाया सँवारा। यहाँ के लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्होंने बहुत से काम किये। अगर सेठ किरोड़ीमल नहीं होते, तो रायगढ़ इतना पिछड़ा हुआ होता कि हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। आज का रायगढ़ अस्सी पचासी साल पीछे चला जाता। आज भी छत्तीसगढ़ दो मामलों में बहुत पिछड़ा हुआ है– एक तो शिक्षा, दूसरा स्वास्थ्य। उसके लिए हमको बाहर जाना होता है। उन्होंने उस समय देश के इने–गिने संस्थाओं की तर्ज पर यहाँ हास्पिटल, कॉलेज और स्कूल बनवाये।

जनचेतना के अग्रदूत सेठ किरोड़ीमल ने सभी सुविधाओं से युक्त एक पुस्तकालय की भी स्थापना 1954–55 में की थी। इसका निर्माण नेत्र चिकित्सालय और बूजी भवन (धर्मशाला) के बीच किया था। इस पुस्तकालय का परिवर्धन पालूराम ढनढानिया कामर्स कॉलेज के प्राचार्य श्री नंदलाल शर्मा ने बड़ी निष्ठा से किया था, खेद है रख–रखाव के अभाव में वह प्रायः सभी विषयों की पुस्तकों का विशाल ग्रंथालय भी दीमकों का आहार हो गया। धर्मशाला में ठहरनेवाले यात्रियों के लिए ट्रस्ट की ओर से भोजन–पानी की व्यवस्था रहती थी, खेद है, इसका उपयोग व्यावसायिक परिसर के रूप में किया जा रहा है। सेठ जी द्वारा निर्मित कॉलोनियों में वर्षों से काबिज में से कुछ लोग स्थाई रूप से कब्जा कर चुके हैं, लेकिन प्रशासन अबतक इन पर रोक नहीं लगा पाई है।

लोगों के द्वारा यह भी बताया जाता है कि भारत के भूतपूर्व रक्षा मंत्री और हरियाणा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बंशीलाल अपने गर्दिश के दिनों में रोजी–रोटी की तलाश में रायगढ़ आये थे; लेकिन बात नहीं बनी और वे वापस चले गए थे।

वैसे छत्तीसगढ़ दानवीरों का गढ़ रहा है। रायपुर में दाऊ कल्याण

सिंह, बिलासपुर में पं देवकीनन्दन दीक्षित और रायगढ़ में सेठ किरोड़ीमल। छत्तीसगढ़ के विकास में इन तीनों विभूतियों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। इन्हीं का अनुसरण करते हुए शक्ति के वरिष्ठ शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ. राजेश अग्रवाल ने हाल ही के वर्षों में नया बस स्टैंड के लिए अपनी बेशकीमती जमीन नगरपालिका शक्ति को दान कर एक मिसाल पेश किया है, जो कि अनुकरणीय है।

शहर से छः किलोमीटर दूर किरोड़ीमल नगर, किरोड़ीमल रेलवे स्टेशन, रायगढ़ शहर का एक और उपनगर है, जिसे सेठ किरोड़ीमल के नाम से शासन द्वारा बनाया गया है।

आधुनिक रायगढ़ के इस महान शिल्पी का देह पतन 2 नवम्बर 1965 को हुआ था। पर यश–काया रूप से वे आज भी हमारे बीच जीवित हैं। ऐसे महान धर्मावलम्बी सेठ किरोड़ीमल का नाम समाज द्वारा क्या कभी भुलाया जा सकता है, रायगढ़ उनका सदैव ऋणी रहेगा।

कविता

नगर की नसों में बहता हूँ

मिथिलेश आदित्य
बजरंगबली मंदिर परिसर, रानीगंज, मेरीगंज
अररिया, मो.–9973536489

मैं नगर की नसों में बहता हूँ–
हर चौक, हर चौराहा मेरी धड़कन–सा धकधकाता है
हर गली, हर पगडंडी
जैसे मेरी स्मृतियों की ओस में नहाई हुई कोई राह हो
हर रास्ता मुझे अपनी बाँहों में भरकर
मेरे घर की देहरी तक लाया है

मैं जानता हूँ–
कहाँ, किसके द्वार पर कौन–सी कली मुस्कुराई है
और किस श्रद्धालु ने उसे चुपके से तोड़कर
ईश्वर के चरणों में रख दिया है

कहाँ की हरियाली ने
कितनी बार अपनी बाँहें फैलाई होंगी
कहाँ के पौधे किस स्नेहिल बूँद से पलकर बढ़े होंगे
कहाँ के पौधे बरसातों में भींगकर खिलखिलाए होंगे
किस वृक्ष के पत्ते अब झड़कर
धूल में मिल गए होंगे
और किस शाख पर अब
फलों का मधुर भार झूल रहा होगा–
जो अपने मीठे सपनों को सँजो रहे होंगे

कौन से हाथ फल तोड़ने को उठे होंगे
कौन से सपने धरती पर गिरे होंगे
मैं देख रहा हूँ–
कौन से हाथ झुके हैं फल तोड़ने को
कौन सी आँखों में अभी भी
कोपलों के सपने पल रहे हैं।

नगर के गलियारे में, हर चेहरे पर
मैं अपने जीवन की कोई कथा पढ़ लेता हूँ
हर गली, हर मोड़ मुझे पहचानते हैं–
जैसे प्रेमी, प्रेमिका की भावनाओं को जान रहा होता है

मैं जानता हूँ
कब कौन सा मजदूर जागा होगा
कब थके कदमों से काम पर निकला होगा
कब भूख से जूझते हुए
अपना सूखा निवाला निगल रहा होगा
और किसने अपने प्रभाव के दम पर
मजदूर का निवाला छीन लिया होगा

मैं जानता हूँ–
निवाला छीननेवाला जीवन कैसे
ईमानदारी को छोड़
बेईमानी और प्रताड़ना के ज़रिए
कमज़ोर लोगों को अपने अधीन करता है

मैं देखता हूँ
कहाँ कोई चिड़िया सुबह की धूप में
फुदकती हुई दाना चुग रही होगी
कहाँ वह छज्जे के नीचे
तिनकों से अपना घर बना रही होगी
कौन–सी डाल अब भी उसका बसेरा है
और कौन–सी शाख से
उसके बच्चों की पहली चहचहाहट
उतर रही होगी मेरे आँगन तक

कौन–से पंछी अब भी
आसमान की खुली छाती में अपनी उड़ान भर रहे होंगे
और कौन–से पंख
धूल और धुँए से लथपथ होकर
फिर भी गीत रच रहे होंगे

मैं यही भी जानता हूँ–
किस आँगन में अभी–अभी
गाय ने बछड़े को जन्म दिया होगा
कौन–सी गाय अब
अपने भरे थन से मुस्कुरा रही होगी
और किसने सुबह उठते ही
अपने बेटे को पुकारा होगा–
''जा रे, दौड़ के रस्सी लाओ–
गंगा वाली गाय ने फिर से
तीन सेर दूध दे दिया आज''

मैं पहचानता हूँ–
गायों के नामों से भी घर के लोगों को
किसके यहाँ 'धोरी' है
किसके यहाँ 'भूरी' है–
कौन–सी गाय काशी से आयी थी
कौन–सी चंपारण से लायी गई थी
कौन–सी गाय अब भी गोधूलि में
गोल–मटोल बछड़े को चाटती है

मैं सब कुछ जानता हूँ–नगर को
जैसे वृक्ष अपनी जड़ों से फुनगियों तक
खुद को जानता है
मैं अपने घर की चुप्पियों में बैठा
नगर की कहकशाँ को निहारता हूँ
आप भी अपनी साँसों को धीमा कीजिए
आराम की छाँव में
अपने भीतर के नगर से मिलिए।

व्यंग्य

निमंत्रण–पत्र न बुलाने का

सीताराम गुप्ता
ए.डी. 106 सी., पीतमपुरा, दिल्ली
मो.नं0 9555622323

कभी आपको किसी शादी–विवाह अथवा अन्य किसी समारोह में न आने का निमंत्रण–पत्र मिला है? न आने का निमंत्रण–पत्र? हाँ, न आने का निमंत्रण–पत्र। ये कैसे हो सकता है कि न बुलाने के लिए भी कोई किसी को निमंत्रण–पत्र भेजे? हो सकता है और खूब हो सकता है। हो सकता है आपको ऐसे निमंत्रण–पत्र न मिले हों; लेकिन हमें तो न जाने कितनी बार न बुलाने के निमंत्रण मिल चुके हैं। तो क्या निमंत्रण–पत्र में लिखा होता है कि आपको नहीं आना है? नहीं बुलाना हो तो भी ये बात कैसे लिखी जा सकती है और लिखने की जरूरत भी क्या है? बस तरीका आना चाहिए निमंत्रण–पत्र भेजकर न बुलाने का। ये एक कला है और इस कला में सभी पारंगत नहीं होते। अन्य कलाओं की तरह कुछ खास किस्म के लोग ही निष्णात होते हैं इस कला में भी। वे आपको विधिवत् निमंत्रण–पत्र भेजेंगे और आप चाहते हुए भी बिल्कुल नहीं जा पाएँगे और इसके लिए वे आपकी फजीहत भी करेंगे, इस बात की भी गारंटी है।

आप नहीं जा पाएँगे और नहीं जा पाने के कारण उलाहने भी सुनेंगे। यही तो खास बात होती है ऐसे न बुलाने वाले निमंत्रण–पत्रों की। ऐसे निमंत्रण–पत्र भेजने वाला बाद में जब भी कहीं मिलेगा, आपसे न आने की शिकायत करेगा और आपको अपनी सफाई तक पेश करने का मौका नहीं देगा। कहेगा–भाई! बच्चों को आशीर्वाद देने भी नहीं पहुँचे आप? कम–से–कम आपसे तो ऐसी उम्मीद नहीं थी। बड़े बेटे और मँझली बेटी की शादी में भी नहीं आए थे? हमारे कौन से दस–बीस बच्चे हैं, जो आप आशीर्वाद देते–देते थक गए? हमसे क्या गलती हो गई बड़े भाई? कोई गलती हो गई है, तो बता दो, अभी माफी माँग लेता हूँ, सबके सामने आपके पैर पकड़के या आपने कसम खा रखी है कि हमारी देहली पर कदम न रखने की?'' भाई बात ऐसी है कि... आप कुछ बोलना चाहेंगे, तो बीच में ही आपकी बात काटकर कहेगा–हाँ, बोलिए। बड़े भाई, पर ये मत कहना कि चिट्ठी नहीं मिली।''

हाँ, ये पचास–साठ साल पुराने अचूक नुस्खे थे निमंत्रण–पत्र भेजकर न बुलाने के जब हाथ से लिखकर और उन पर हल्दी के छींटे मारकर डाक से शादी की चिट्ठियाँ भेजी जाती थीं। सभी भाई–बंधुओं और रिश्तेदारों को भेजी जाती थीं शादी की चिट्ठियाँ। जिनको बुलाना होता था उनको भी और जिनको नहीं बुलाना होता था उनको भी; लेकिन जिनको नहीं बुलाना होता कुछ इस तरह से कि शादी के ऐन दिन या उसके बाद ही मिल पाए। ऐसे में आप पहुँचकर दिखलाइए शादी में कैसे पहुँचेंगे? आपको निमंत्रण भी मिला और चाहकर भी नहीं पहुँच पाए शादी में। यही है न बुलाने का निमंत्रण। फिर भी भाई साहब शिकायत कर रहे हैं कि आप पहुँचे नहीं। आप कह रहे हैं कि चिट्ठी देर से मिली, इसलिए पहुँचना संभव नहीं था। इस पर भाई साहब कहते हैं–'छोड़िए, भाई साहब! ये सब बहाने पुराने हो चुके हैं। एक आपको ही समय पर कार्ड नहीं मिला और बाकी सब लोगों को मिल गए और सब आ भी गए। बहस करना बेकार है: क्योंकि ये निमंत्रण–पत्र था ही आपको न बुलाने के लिए और साथ ही आपकी फजीहत करने के लिए। जब हाथ से लिखी चिट्ठियों का दौर समाप्त हुआ और छपे हुए निमंत्रण–पत्रों का दौर शुरू हुआ, तब भी न बुलाने के निमंत्रण–पत्र भेजने की परंपरा जीवित रही। इसके बाद फोन का जमाना आया। लोग फोन से सूचित करने लगे। कुछ लोग डाक से निमंत्रण–पत्र भेजकर फोन से भी सूचित कर देते। समय पर फोन कर दिया और बतला दिया कि निमंत्रण–पत्र डाक से भेजा है मिल जाएगा; लेकिन जब तक निमंत्रण–पत्र हाथ में न आए जाने की तैयारी कैसे शुरू हो? उधर बारात निकालने की तैयारियाँ हो रही हैं और इधर हजार कोस दूर डाक से निमंत्रण–पत्र मिल रहा है। कुछ देर बाद फोन भी आ रहा है, 'भाई साहब कहाँ पहुँचे? आपका बेसब्री से इंतजार हो रहा है।' कहा कि भाई निमंत्रण–पत्र तो अभी एक घंटा पहले ही मिला है। प्रत्युत्तर में पूछा गया कि क्या आपको फोन नहीं किया था? अब क्या कहें? किससे कहें? जब निमंत्रण–पत्र छपवाए थे, तो समय पर भेज देने में क्या हर्ज था? अब तो आप भी समझ गए होंगे कि ये किस प्रकार निमंत्रण–पत्र था?

ऐसा नहीं कि रिश्तेदार ही न बुलाने के निमंत्रण–पत्र भेजते हैं और दूर के रिश्तेदार ही ऐसे निमंत्रण–पत्र भेजते हैं, अपितु पास के रिश्तेदार और दोस्त भी इस नेक काम में उनसे पीछे नहीं रहते। कई बार फोन भी न बुलाने के निमंत्रण के लिए उत्तरदायी होते हैं। एक मित्र के लड़के की शादी थी। खैर, शादी में तो उन्होंने बुलाया ही, साथ ही सगाई पर भी बुलाने की पूरी कोशिश की थी। सगाई का कार्यक्रम दोपहर को रखा था। शाम को मित्र महोदय तमतमाते हुए आए और बरस पड़े, 'सुबह से फोन लगा–लगाकर थक गया, लेकिन तुम्हारा फोन नहीं मिलने दिया। जब भी फोन किया होल्ड मिला। तुम्हें कितनी बार कहा है कि फोन को ठीक से रखा करो। सब लोग पूछ रहे थे, तेरे बारे में कि क्यों नहीं आया। पूछा कि भाई साहब! चार दिन पहले ही तो मैं मिला था, उस दिन तो आपने जिक्र नहीं किया था? जवाब मिला कि जिक्र तो तब करता न, जब प्रोग्राम निश्चित होता। कल ही प्रोग्राम निश्चित हुआ था। मिठाई वगैरह देकर वे चले गए और साथ ही शादी के दिन समय पर पहुँचने की ताकीद करके भी। शादी के दिन नियत समय पर पहुँचे, तो पाया कि बारात आधा घंटा पहले निकल चुकी थी।

अगर आप समझते हैं कि मोबाइल और इंटरनेट के दौर में न बुलाने के निमंत्रण–पत्र नहीं भेजे जा सकते, तो आप मुगालते में हैं। आपको वाट्स एप्प पर निमंत्रण–पत्र भी भेजेंगे और फोन भी करेंगे; लेकिन फिर भी आप नहीं जा पाएँगे, इस बात की गारंटी है। कलाकार हर दौर में कलाकारी करने में निपुण होते हैं। अभी कुछ दिन पहले की ही बात है। वाट्स एप्प पर एक निमंत्रण–पत्र मिला। अच्छा लगा पढ़कर; क्योंकि ये एक डेस्टिनेशन वेडिंग थी। ऐसी बड़ी शादियों में जाने के मोके कम ही मिलते हैं, इसलिए प्रसन्नता कुछ ज्यादा ही हो रही थी। वाट्स एप्प पर निमंत्रण–पत्र के बाद फोन भी आ गया–जी, बहुत–बहुत बधाई! शुभकामनाएँ! सबको आना है और वहीं पर बधाई देना। शादी का दिन भी आ पहुँचा। पता देखने के लिए वाट्सऐप खोलकर निमंत्रण–पत्र निकाला; लेकिन निमंत्रण–पत्र पर रिजॉर्ट का नाम तो लिखा था, पर पता नहीं दिया गया था। बहुत देर तक सोचता रहा कि ये रिजॉर्ट कहाँ पर होगा? गूगल पर भी खोजने की कोशिश की; लेकिन कामयाबी नहीं मिली। फिर सोचा कि फोन करके पता पूछ लेता हूँ, तभी एकदम जहन में आया–अरे! ये तो न बुलाने का निमंत्रण–पत्र है।''

रपोर्ताज

हरफनमौला 'कैफी' की कैफियत

पुण्यतिथि 10 मई पर विशेष

कृष्ण कुमार यादव
उत्तर गुजरात परिक्षेत्र, अहमदाबाद
मो.– 09413666599

हिन्दुस्तान की आलातरीन शख़्सियतों में शुमार कैफी आजमी का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। अपने तमाम यादगार नग्मों के जरिये कलम की रोशनी से रूमानियत की गहराइयों को नापनेवाले मशहूर शायर और गीतकार कैफी आजमी की बहुरंगी कैफियत उर्दू अदब का बेजोड़ सरमाया है और उनका साहित्य रोशनाई के जरिये समाज में बदलाव लाने की उनकी पुरजोर कोशिशों का अक्स भी पेश करता है। पर कैफी साहब की शख़्सियत को सिर्फ इतना ही आँकना उनके साथ ज्यादती होगी। वे महज एक सुविधाभोगी बुद्धिजीवी न रहकर मजदूर किसान संघर्ष और कम्युनिस्ट राजनीतिक आंदोलन में गहरी दिलचस्पी और पैठ रखते थे। वे एक अजीम शायर व गीतकार होने के साथ–साथ एक अजीम इंसान भी थे। दूसरे शब्दों में कहें तो कैफी आजमी एक व्यक्ति न होकर एक पूरा युग हैं और उन्होंने जिंदगी को न सिर्फ जिया, बल्कि कई नये आयाम भी गढ़े।

उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिले के एक छोटे–से गाँव मिजवों में 19 जनवरी, 1919 को जन्मे कैफी आजमी का मूल नाम अतहर हुसैन रिज़वी था। गाँव के माहौल में शेरो–शायरी और ग़ज़लें पढ़ने का शौक लगा, तो परवान ही चढ़ता गया। उनके कलाम में जिन्दगी का फलसफा अपनी सबसे ज्यादा ताकतवर आवाज में बोलता है। तभी तो महज ग्यारह साल की उम्र में कैफी साहब ने अपनी पहली ग़ज़ल कही थी। उनकी उस दौर की ग़ज़लों में से तो अधिकतर नष्ट हो गयीं, मगर इतनी कम उम्र में लिखी उनकी एक ग़ज़ल को बाद में बेगम अख्तर ने गाया और यह ग़ज़ल बहुत मशहूर भी हुई।

इस ग़ज़लगोई के पीछे भी एक रोचक किस्सा है। बहराइच (उ. प्र.) में हुए एक मुशायरे में कैफी ने अपने बड़े भाइयों के साथ एक ग़ज़ल पढ़ी, जिस पर सभी ने कुछ इस ढंग से दाद दी, जैसे कैफी ने अपने किसी बड़े भाई की ग़ज़ल अपने नाम से पढ़ी हो। पर जब ऐसा ही कुछ उनके पिताजी ने कहा, तो उन्हें नागवार गुजरा और वह रोने लगे। ऐसे में बड़े भाई शब्बीर हुसैन 'वफा' ने पिताजी को जब यह बताया कि यह ग़ज़ल खुद कैफी की लिखी है, तो एकबारगी उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। अन्ततः शक दूर करने के लिए उन्होंने कैफी को एक मिसरा दिया और उस पर ग़ज़ल कहने को कहा। यह मिसरा था–इतना हँसो कि आँख से आँसू निकल पड़े। थोड़ी देर में कैफी ने यह ग़ज़ल कह डाली और सभी को यकीन दिला दिया कि वे वास्तव में शायरी कर सकते थे। यह जीवन में कैफी साहब का पहला इम्तिहान था, जिसे उन्होंने पास कर लिया और उसके बाद ग़ज़ल–शायरी के प्रति उनकी लगन और बढ़ती गयी। यह ग़ज़ल कुछ यूँ थी–

''इतना तो जिन्दगी में किसी की खलल पड़े,
हँसने से हो सुकून ना रोने से कल पड़े
मुद्दत के बाद उसने की जो लुत्फ की निगाह
जी खुश तो हो गया मगर आँसू निकल पड़े।"

इस ग़ज़ल के बारे में खुद कैफी साहब कहा करते थे कि जब इन शेरों को देखता हूँ, तो समझ नहीं आता कि इनमें मेरा क्या है? पूरी ग़ज़ल में वहीं बातें, जो अशातिजः (पुराने शायर) कह चुके थे।... खुद मैं अब ऐसी ग़ज़ल नहीं कह सकता; लेकिन इसकी यह खूबी है कि इसने लोगों का शक दूर कर दिया और सबने यह मान लिया कि मैंने जो कुछ अपने नाम से मुशायरे में सुनाया था, वह मेरा ही कहा हुआ था, माँगे का उजाला नहीं था।''

कैफी आजमी के पिता सईद फतेह हुसैन रिज़वी एक जमींदार थे, मगर जमाने के रूख के अनुसार उन्होंने तहसीलदार के पद पर भी काम किया। उनकी दिलीतमन्ना थी कि कैफी को आधुनिक शिक्षा मिले, पर होनी को तो कुछ और ही मंजूर था। उसी दौरान कैफी की चार बहनें टीबी (यक्ष्मा) के रोग से ग्रस्त होकर गुजर गयीं, तो उनके पिताजी को लगा कि वो अपने बेटे को आधुनिक शिक्षा देना चाहते हैं, इसीलिए खुदा उन्हें सजा दे रहा है। फिर क्या था, उन्होंने कैफी आजमी को इस्लाम धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए लखनऊ के 'सुलतान–उल–मदारिस' में भर्ती करा दिया। उनके पिता उन्हें अब एक मौलाना के रूप में देखना चाहते थे; लेकिन कैफी को उससे कोई सरोकार नहीं था और वह मजदूर व मजबूर वर्ग के लिए कुछ करना चाहते थे। तभी तो वह वहाँ ज्यादा दिनों तक नहीं रह सके। बाद में उन्होंने लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई और उर्दू, अरबी और फारसी जुबान सीखी। साहित्य के प्रति उनमें काफी लगाव थी। कैफी के दिलोदिमाग में साहित्य की पहली छाप तो उनकी दादी की कहानियों से ही पड़ चुकी थी, जिनमें पहले युग के राजाजों और शहीदों का जिक्र हुआ करता था। इन कहानियों का कैफी के भोले जेहन पर बहुत असर हुआ और जब कैफी लिखने लगे, तो वो ज्यादा से ज्यादा समाज में घर कर चुकी विसंगतियों के बारे में लिखते।

खुले जेहन के शख़्स कैफी उसूलपसंद थे। उन्होंने समाज की नब्ज़ को बेहद करीब से महसूस किया था और वो उसके लिए फिक्रमंद भी थे। एक तरफ अंग्रेजी हुकूमत का जुल्म व इस्तेब्दाद, वहीं दूसरी तरफ मजहबी नफरत और फिरकापरस्ती उनके जेहन को बेंधते थे। उनके अन्दर हवा के खिलाफ चलने का माद्दा था। उनके ख़्यालात ड्रांइगरूम की पैदाइश नहीं, बल्कि सड़क के किनारे फुटपाथ पर बैठकर भी पैदा होते थे। उन्होंने अपने को जिस तरह से परिवर्तनकामी राजनीति और प्रगतिशील साहित्य दृष्टि से जोड़ा, वह उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और अग्रगामी चिंतन का ही परिणाम था। तभी तो उन्होंने मदनपुरे के फुटपाथ पर बैठकर 'मकान' नामक नज़्म लिखी–

''आज की रात बहुत गर्म हवा चलती है,
आज की रात न फुटपाथ पे नींद आयेगी,
सब उठो, मैं भी उठूँ, तुम भी उठो, तुम भी उठो,
कोई खिड़की इसी दीवार में खुल जायेगी।''

वर्ष 1936 में साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर कैफी ने इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली। धार्मिक रूढ़िवादिता के विरोधी कैफी को इस विचारधारा में जैसे सारी समस्याओं का हल मिल गया। उन्होंने निश्चय किया कि सामाजिक संदेश के लिए ही लेखनी का उपयोग करेंगे। 24 वर्ष की उम्र में कैफी ने कानपुर में एक कपड़े की मिल में काम करना शुरू किया और वहाँ साम्यवादी गतिविधियों के और करीब आये।

वर्ष 1943 में जब साम्यवादी दल ने मुंबई कार्यालय शुरू किया, तो कैफी आजमी को वहाँ पर जिम्मेदारी देकर भेजा। राजनीतिक नजरिए से वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे, अतः मुंबई में उनका जुहाव सीपीआई और कौमी जंग से खूब हुआ। यहाँ आकर कैफी ने उर्दू जर्नल 'मजदूर मोहल्ला' का भी संपादन किया। बंबई में कैफी ने मजदूरों के साथ रहना शुरू कर दिया और उन्हें अपनी ग़ज़लें सुनाया करते थे। वे मजदूरों की परेशानियाँ सुनते और कौमी जंग में लिखा करते थे। इसी दौरान उन्होंने अपनी दो किताबें भी प्रकाशित की–'झंकार' और 'आखिरे शब'। इन दोनों काव्य–संग्रहों की काफी आलोचना हुई कि वो उनकी पार्टी से प्रभावित है और बस तालियाँ बटोरने के लिए हैं। आलोचकों ने तो यहाँ तक कह डाला कि इन ग़ज़लों की उम्र नहीं है, बस ये मुशायरों में भीड़ इकट्ठा करने के काम आयेंगी। अपनी आलोचनाओं से बेपरवाह कैफी आजमी अपनी धुन में बढ़ते रहे और संजीदगी के साथ कार्य करते रहे। जब उनका तीसरा काव्य संकलन 'आवारा सजदे' लोगों के हाथ में आया, तो आलोचकों ने उसे भी पुराने पैमानों पर तौलना शुरू कर दिया, मगर जब 'आवारा सजदे' को साहित्य अकादमी पुरस्कार और सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड से नवाजा गया, तो आलोचकों को स्वतः जवाब मिल गया।

कैफी आजमी एक जगह बँधकर रहनेवालों में से नहीं थे। साहित्य और सामाजिक सरोकारों को लेकर यथास्थितिवाद की पैरोकारी के वे आरंभ से ही खिलाफ थे। वे विभिन्न जगहों पर घूमते, मुशायरों में भाग लेते और सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध लोगों को सचेत भी करते। इसी क्रम में 1947 में एक मुशायरे में भाग लेने के लिए कैफी हैदराबाद गए और वहीं उनकी मुलाकात शौकत से हुई। यह मुलाकात अंततः प्यार में बदल कर मई 1947 में शादी में तब्दील हो गयी। शादी के बाद शौकत ने रिश्ते की गरिमा इस हद तक निभाई कि खेतवाड़ी में पति के साथ ऐसी जगह रहीं, जहाँ टायलेट–बाथरूम तक कॉमन थे। यहीं पर उनकी बिटिया शबाना आजमी और बेटे बाबा जाजमी का जन्म हुआ। बाद में दोनों जुहू स्थित बंगले में आए। अपने घर के बारे में शबाना आजमी ने दर्ज किया है–''मैंने जब इस दुनिया में आँखें खोली, तो जो पहला रंग मैने देखा वो था–लाल! मैं बचपन में अपने माँ–बाप के साथ 'रेड फ्लैग हॉल' में रहती थी, जहाँ बाहर के दरवाजे पर ही एक बड़ा–सा लाल झण्डा लहराता रहता था। जरा सी बड़ी हुई, तो बताया गया कि लाल रंग मजदूरों का रंग है। मेरा बचपन या तो अपनी माँ के साथ पृथ्वी थियेटर के ग्रुप के साथ अलग–अलग शहरों के सफर में गुजरा या अपने बाप के साथ ऐसे जलसों में। मदनपुरा बम्बई की एक बस्ती है, यहाँ मैं अब्बा के साथ ऐसे जलसों में जाती थी। हर तरफ लाल झण्डे, गूंजते हुए नारे और अन्याय के खिलाफ शायरी और फिर गूँजता हुआ–इन्कलाब जिन्दाबाद!

कैफी और शौकत–दोनों का ही अंदाज एक था, वह चाहे जीवन के प्रति हो या समाज के प्रति। एक बार जब शौकत ने बम्बई में एक थिएटर कंपनी में काम करने की इजाजत माँगी, तो कैफी ने उनको मना नहीं किया, जबकि उन दिनों किसी सम्मानजनक परिवार की मुस्लिम महिला का थिएटर में काम करना अच्छा नहीं माना जाता था। कैफी आजमी शुरू से ही नारी सशक्तीकरण के पक्षधर रहे। उन्होंने उर्दू में 'औरत' नाम से एक बेहद सशक्त नज्म लिखी है, जिसकी कुछेक पंक्तियाँ गौरतलब हैं–

''उट्ठ मेरी जान! मेरे साथ ही चलना है तुझे
तोड़कर अजम–ए–शिकन, दगदग–ए–बंद भी तोड़
तेरी खातिर है जो जंजीर, वह सौगंध भी तोड़
तौक यह भी कि, जमरुद का गुलुबन्द भी तोड़
तोड़ पैमाना–ए–मरदान–ए–खिरमंद भी तोड़
बन के तूफान छलकना है, उबलना है तुझे
उट्ठ मेरी जान! मेरे साथ ही चलना है तुझे।''

कैफी आजमी बहुआयामी व्यक्तित्व के शख़्सियत थे। सामाजिक कार्यों के साथ–साथ अपनी लेखनी की धार भी वे पैनी करते रहते थे। मुशायरों की तो वे जान थे। उस दौर में साहिर लुधियानवी साहब बहुत लोकप्रिय थे, सरदार ज़ाफरी का बड़ा सम्मान था, मगर कैफी आज़मी की एक अलग बात थी। वो मुशायरे के बिल्कुल आखिर में पड़नेवाले चन्द शायरों में से एक थे। उनकी गूंजती हुए गहरी आवाज में एक अजीब शक्ति, एक अजीब जोश, एक अजीब आकर्षण था। पर कभी वे अपनी तारीफ नहीं करते थे। वे खुद–ब–खुद कहा करते थे कि ''डिखोरे लोग अपनी तारीफ करते हैं, जिस दिन मुशायरे में बुरा पढ़ूँगा, उस दिन आकर बताऊँगा। उन्होंने कभी अपने काम की नुमाइश नहीं की। गाना रिकार्ड होता, तो कभी उसका कैसेट तक घर नहीं लाते थे। उनकी बेहतरीन नज़्मों में 'औरत', 'मकान', 'दायरा', 'साँप' और 'बहरुपनी' मशहूर हैं। कैफी की किताबें एवं कविता संग्रह 'कैफियत', 'आवारा सजदे', 'सरमाया', 'मेरी आवाज सुनो', 'नयी गुलिस्तान' और 'जहर–ए–इश्कश कद्रदानों के लिए किसी खजाने से कम नहीं है।

कैफी आज़मी ने फिल्मों में भी काम किया। बतौर गीत लेखक शाहिद लतीफ द्वारा निर्देशित 'बुजदिल' (1951) उनकी पहली फिल्म थी। कैफी की भावुक, रोमांटिक और प्रभावी लेखनी से प्रगति के रास्ते खुलते गए और वे सिर्फ गीतकार ही नहीं, बल्कि पटकथाकार के रूप में भी स्थापित हो गए। 'यहूदी की बेटी' और 'ईद का चाँद' उनकी लिखी आरंभिक फिल्में थीं। उन्होंने 'गरम हवा' और 'मंथन' जैसी फिल्मों के लिए संवाद भी लिखे। उन्होंने कई फिल्मों के लिए गीत लिखे, जिनमें कुछ प्रमुख हैं–शमा, कागज के फूल, हकीकत, अनुपमा, अर्थ, हिन्दुस्तान की कसम, हँसते ज़ख़्म, आख़िरी ख़त, शोला और शबनम व हीर रांझा। 'हीर रांझा' कैफी की सिनेमाई कविता कही जा सकती है। कैफी के कुछ प्रमुख गीत हैं–मैं ये सोच के उसके दर से उठा था (हकीकत), है कली–कली के रुख पर तेरे हुस्न का फसान (लालारुख), वक्त ने किया क्या हसीं सितम (कागज के फूल), इक जुर्म करके हमने चाहा था मुस्कुराना (शमा), जीत ही लेंगे बाजी हम तुम (शोला और शबनम), तुम पूछते हो इश्क भला है कि नहीं है (नकली नवाब), राह बनी खुद मंजिल (कोहरा), सारा मोरा कजरा चुराया तूने (दो दिल), बहारों मेरा जीवन भी सँवारो (आखिरी रात), धीरे–धीरे मचल ए दिल–ए–बेकरार (अनुपमा), या दिल की सुनो दुनिया वालों (अनुपमा), मिलो न तुम तो हम घबराए (हीर रांझा), ये दुनिया ये महफिल (हीर रांझा), जरा सी
आहट होती है तो दिल पूछता है (हकीकत)... इत्यादि। उन्होंने जिन फिल्मों में गीत लिखे, उनमें से कुछ बॉक्स ऑफिस पर भले ही सफल नहीं हो सकीं, लेकिन उनके नग्मों ने कामयाबी की नयी इबारतें लिखीं।

हरफनमौला कैफी आजमी को तमीज तहजीब का बहुत ख्याल रहता था। वे तकल्लुफपसंद थे और उनमें राजनीति की गहरी समझ व दिलचस्पी थी। वे लेखन और अपने कर्म को एकांतिक बौद्धिक साधना न

मानकर सक्रिय सामाजिक दायित्व मानने के पक्षधर थे। उनकी जिंदगी में सितारों की चकाचौंध थी तो मजदूरों का दर्द भी, पर वे सदैव मजदूरों के साथ खड़े रहे। अपने फिल्मी व लेखन कैरियर में भी उन्होंने तमाम तमगे हासिल किये। वर्ष 1970 में 'सात हिन्दुस्तानी' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ गीतकार का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार और 1973 में इस्मत बुगताई की अप्रकाशित कहानी पर आधारित 'गरम हवा' फिल्म के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ कहानी, पटकथा और संवाद के लिए फिल्मफेयर पुरस्कार दिया गया। इसके अलावा उन्हें महाराष्ट्र उर्दू अकादमी से विशेष पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, साहित्य अकादमी की आजीवन फैलोशिप, एफ्रो–एशियाई राइटर्स लोटस अवार्ड और राष्ट्रपति से राष्ट्रीय एकता पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों हेतु उन्हें पद्मश्री से भी नवाजा।

कैफी आजमी आजीवन लोगों के लिए लड़ते रहे। कभी अपनी रचनाओं से, तो कभी फिल्मों के माध्यम से या फिर सड़कों पर। अपने जीवन में उन्होंने उसूलों से कभी समझौता नहीं किया। वे जैसे अन्दर थे, वैसे ही बाहर। साफगोई उनके स्वभाव में था। मजदूरों का दर्द उनसे कभी नहीं देखा गया। वो अपनी तरह के एक अलग ही शख़्स थे, जो हर मोड़ पर अपनी कहानी लिखने को आमदा था। साम्प्रदायिकता विरोधी अभियानों और परिवर्तनकामी साहित्यिक गतिविधियों में कैफी स्वयं को शामिल करने से कभी न रोक पाये। उनके समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष विचारों ने हिंदू और मुस्लिम कट्टरपंथियों–दोनों का गुस्सा अर्जित किया। वे अक्सर कहा करते थे कि ''मैं एक गुलाम बनाकर भारत में पैदा हुआ था, मैं एक स्वतंत्र भारत में बड़ा हुआ और मैं एक समाजवादी भारत में मरूँगा।''

आजादी की लड़ाई को कैफी आज़मी ने बड़े नजदीक से देखा और महसूस किया था। वह आजादी की कीमत समझते थे और उसे आगामी पीढ़ियों हेतु सुरक्षित भी रखना चाहते थे। तभी तो उन्होंने हकीकत फिल्म में एक ऐसा गीत लिखा, जो आज भी लोगों की जुबाँ पर है। इस गीत के माध्यम से उन्होंने देश के लोगों को शहीदों के हृदय की पीड़ा और देश के प्रति उनकी चिंताओं को दर्शाने का प्रयास किया। साथ ही लोगों को उनकी जिम्मेदारियों का भी एहसास कराया–

''कर चले हम फिदा जान–ओ–तन साथियो
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो
जिंदा रहने के मौसम बहुत हैं मगर
जान देने की रुत रोज आती नहीं
हुस्न और इश्क दोनों को रुसवा करे
वो जवानी जो खूँ में नहाती नहीं
आज धरती बनी है दुल्हन साथियों...।''

पर जब कैफी साहब ने देखा कि आजादी के बावजूद मुल्क में बदहाली, मुफलिसी, बेरोजगारी व असमानता खत्म नहीं हो रही है, तो उनका मन विचलित हो उठता। हर शख़्स को पेट भरने के लिए रोटी, बदन ढकने के लिये कपड़ा और सर छुपाने के लिए मकान मयस्सर नहीं हो रहा है, तो उनका दर्द छलक पड़ा–

''एक दो नहीं छब्बीस दिये
एक एक करके जलाये मैंने
इक दिया नाम का आजादी के
उसने जलते हुए होंठों से कहा
चाहे जिस मुल्क से गेहूँ माँगो
हाथ फैलाने की आजादी है।''

कैफी आजमी ताजिंदगी फिरकापरस्ती व मजहबी भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाते रहे। 1992 में जब अयोध्या में बाबरी मस्जिद बहा दी गयी, तो उनकी अंतरात्मा कराह उठी। इसलिए नहीं कि वे हिन्दू या मुसलमान थे, बल्कि इसलिए कि इसकी आड़ में जो हुआ वह नफरत की एक मिसाल थी। उन्हें लगा कि मानो भगवान श्रीराम को दूसरा वनवास दे दिया गया हो–

''राम बनवास से जब लौट कर घर आये
याद जंगल बहुत आया जो नगर में आये
पाँव धोये बिना सरजू के किनारे से उठे
राम यह कहते हुये अपने द्वारे से उठे
राजधानी की फिजा आई नहीं रास मुझे
छः दिसम्बर को मिला दूसरा बनवास मुझे।''

फिल्मी दुनिया की चकाचौंध भी कैफी को नहीं बाँध पायी। उनका मानना था कि सिर्फ सोचना ही काफी नहीं, सही कर्म भी होने चाहिये। अपने गाँव से उनका जुड़ाव सदैव बना रहा। जीवन के आखिरी दिनों में अपने गाँव की तरक्की के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया। अपने गाँव मिजवाँ, आजमगढ़ में कैफी ने स्कूल, अस्पताल, पोस्ट ऑफिस और सड़क बनवाने में भरपूर मदद की। सादगीपूर्ण व्यक्तित्ववाले कैफी बेहद हँसमुख थे, यह बहुत कम लोग जानते हैं। जब वे ब्रेन हैमरेज के शिकार हुये, तब भी निराश नहीं हुये। इससे लड़ते हुए भी उन्होंने जीवन के इस फलसफे को अपनाया कि बस दूसरों के लिए जीना है। उस हालात में भी उन्होंने एक नज़्म कही, जो उनकी वैचारिक जिन्दादिली का परिचायक है–

''रात जो मौत का पैगाम ले के आई थी
बीवी बच्चों ने मेरे
उसको खिड़की से परे फेंक दिया
और जो वो जहर का एक जाम लेके आई थी
उसने वो खुद ही पिया
सुबह उतरी जो समंदर में नहाने के लिए
रात की लाश मिली पानी में।''

अंततः 10 मई, 2002 को दिल का दौरा पड़ने से जसलोक अस्पताल, मुम्बई में कैफी आजमी का इंतकाल हो गया, पर उनकी जिंदादिली उनकी रचनाओं में आज भी जिंदा है। इंसानियत के दर्द को कैफी बखूबी समझते थे, उससे रू–ब–रू होते थे और उससे निज़ात दिलाने के लिए प्रयास भी करते थे। आम इंसान के दर्द से लेकर मजदूरों, किसानों, गरीबों, मोहताजों के नुमाइंदे रूप में कैफी आज़मी ने उनके हक में आवाज उठाई। ताजिंदगी के नाइंसाफी, जात–पात, ऊँच–नीच, साम्प्रदायिकता के भेदभाव व समाजी जुल्म के खिलाफ लड़ते रहे और लोगों को मोहब्बत, भाईचारगी व इत्तेफाक और अमन का पैगाम देते रहे।

कहानी

मन के तहखाने से

नरेंद्र किशोर सिन्हा
महिमा पैनोरमा अपार्टमेंट, जगतपुरा, जयपुर
मो. 8969358434

साठ साल का सफर। जीवन की डगर। इस जीवन यात्रा में कभी बहुत सुखी भी रहा, बहुत दुखी भी रहा। सुख और दु:ख दोनों ही अनुभव रहे। एक स्प्लिट पेर्सनेलिटी हो गई।

कई दिनों से मन बेहद–बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ पारिवारिक समस्याएँ, कुछ आस–पास के तनाव, कुल ले–देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी अभी जब मैं आपसे रू–ब–रू हूँ, तो स्मृतियों के अनेक कक्षों से गुजरते हुए सीधे तीस–पैंतीस साल पीछे जा रहा हूँ। इस वापसी में कहीं अन्दर की बंशी बहुत प्रबल हो गई है और में बंशी की आवाज के पीछे–पीछे चल देता हूँ।

बाबूजी लोकल हाई स्कूल में क्लर्क थे और सारी जिन्दगी वहीं क्लर्क ही बने रहे। उन्होंने कस्बे से किसी बड़े शहर की ओर रुख नहीं किया। लोग कहते हैं–अगर वह तब दिल्ली जाकर प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी करते, तो जरूर एक बड़ा ऑफिसर बनते, पर किस्मत में तो क्लर्क ही बनना लिखा था। अपने सेवाकाल में उम्र बढ़ने के साथ–साथ उनसे दफ्तर में गलतियाँ भी होने लगी थीं और जब हेड मास्टर उनसे कहता–''बड़े बाबू! यह सब क्या है? आखिर, आप इतने पढ़े–लिखे और अनुभवी हैं, तब भी बाबूजी मुँह तो ऊपर उठाते, जो बेहद सिकुड़ता हुआ होता।

अम्मा एक सामान्य गृहिणी। अपने खूँटों को साथ लेकर चलने वाली। सोखने का अद्‌भुत गुण, अंतहीन प्रतीक्षा और पाप की परिभाषा से अनभिज्ञ। वह दुबली–पतली, छोटी भूरी आँखों वाली खूबसूरत महिला थी। अडोस–पड़ोस से उन्हें ज्यादा मतलब नहीं था। बाबूजी और हम सब भाई–बहन की फरमाइशें पूरी करना उनकी मुख्य जिम्मेदारी होती थी। बाकी समय वह घर सजाने– सँवारने में बिताया करती थी।

हम लोग तीन भाई–बहन थे। तब मेरी दीदी सत्रह और छोटा भाई करीब दस साल का था। मैं 13–14 साल का और बड़ा भाई बीस साल का रहा होगा। बड़े भाई ने बारहवीं के बाद कॉलेज में एडमिशन लेना चाहा था। उसकी उम्र खुद को हैलिंग समझने वाली थी; लेकिन बाबूजी के बजट में रबर की तरह खींच–तान कर भी उसे कॉलेज में पढ़ाने की गुंजाइश ना थी। बाबूजी ने सुझाया था कि भाई टाइप–शॉर्टहैंड सीख ले, बाबू का टेस्ट दे और बतौर प्राइवेट कैंडिडेट बी.ए. भी करता रहे। भाई इतने नीचे सपनों से कम्प्रोमाइज करने को तैयार न था; लेकिन उसे पता था कि झखमार के यही करना पड़ेगा।

दीदी की उम्र का वसंत काल शुरू हो चुका था, अब उसे फूलों के रंग कुछ ज्यादा ही गाढ़े लगते और तितलियों को फूलों पर बैठे गौर से देखती रहती। दीदी उस दौरान लगातार शीशा देखते रहती या खिड़की पर कुहनी टिकाकर बैठी रहती। आँगन के तार पर बैठे पक्षियों के जोड़ों को निहारती रहती। यह ग्यारहवीं में थी। इन हालात में उसके सपनों का भी थोड़ा नीचे रह जाना तय था। बाबूजी चाहते थे कि खाते–पीते किसी शरीफ क्लर्क से उसकी शादी हो जाये – मार्केट में ज्यादा कीमत चुकाने की औकात उनकी थी नहीं। दीदी की कल्पना का हीरो क्लर्क तो कतई नहीं था; लेकिन यथार्थ उसके सामने था। इस तरह हर बार बाबूजी सिकुड़ते चले जाते।

यहाँ तक कि छोटे भाई की भी अपनी शिकायतें थी। उसके सारे दोस्त नर्सरी के.जी से ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार्स सीख कर निकले थे और वह सरकारी स्कूल में पढ़ने की वजह से अभी ए से एपल, एपल माने सेब के तरीके से पढ़ता था। वह समझता था कि ये तरीका पिछड़ा हुआ है। यहाँ भी बाबूजी सिकुड़ जाते।

मेरी परेशानियाँ भी कमोबेश ऐसी ही थी। किसी तरह बी.ए. कर लिया था। मेरे पास कोई नौकरी नहीं थी, तो मेरे मित्र और रिश्तेदार मुझे ऐसे देखते थे, जैसे बेरोजगार व्यक्ति को जीने का कोई हक ही नहीं। ऐसा नहीं था कि मैंने नौकरी के लिए प्रयास नहीं किये। सैकड़ों अर्जियाँ दीं, परीक्षाएँ पास कीं, पर एक अदद नौकरी नहीं जुटा सका। चाचा तो इतना तक कहते थे कि दीपक जाली डिग्री लिए घूमता है, सिर्फ चोरी की डिग्री लिये। इसने अगर सच में मन लगाकर पढ़ाई की होती, तो नौकरी मिल न जाती। मैं निराशा के दलदल में धँस गया था। आशा और विश्वास मेरी पकड़ से दूर होते चले गए। चहुँओर निराशा। एक– एक कर सारे मित्र दूर होते चले गए थे, अपने–पराये भी। सच कहूँ, तो मैंने खुद को एकदम अकेला छोड़ दिया था। नौकरी की अर्जियों और उम्मीदों से दूर। जहाँ अब मुझे न नौकरी की चाह थी, न मकान की, न शादी–ब्याह की। मैंने अपनी कुंडली से नौकरी–चाकरी, बीवी–बच्चे, घर–मकान सब निकाल दिया था। पर, अभी भी कुछ लोग बचे थे, जो बराबर इस विश्वास को मजबूत किये हुए थे कि कभी–न–कभी कुछ जरूर होगा और इसी विश्वास के बल पर मैं अपने दिनों को व्यतीत नहीं, घसीट रहा था। खैर, जिन्दगी को तो चलना ही था, सबकी चलती है, लू के थपेड़े हों या वसंत की बहार, सो लू के थपेड़ों में जिन्दगी बीतती रही।

लोगों के ताने और बेरोजगारी के दंश से व्यथित होकर अंतत: मैंने यह फैसला किया कि इस शहर के स्पर्श से परे इस शहर से दूर चला जाना चाहिए और एक दिन अम्मा की सहमति से दिल्ली महानगर चला आया अपने एक मित्र के यहाँ। महीनों दिल्ली की सड़कों पर खाक छानते रहा। बड़े–बड़े नामों वाले होटल, जहाँ जोड़ों में लोग अन्दर जाते । रिसेप्शन से चाबी लेते और लिफ्ट से ऊपर किसी माले पे चले जाते। मैं टुक–टुक ताकता भर रह जाता।

आज फिर समूचा दिन जेबों से होता हुआ जाने हाथ सरक गया। मैंने कई बार सोचा कि पेंट में जेब लगवा लूँ; लेकिन हर बार सिर्फ सोचकर रह जाता। मुझे हैरत होती थी कि जेबों को इतना महफूज रखने के बावजूद वे इतनी जल्दी फट क्यों जाती हैं। बहुत कम ऐसा होता था कि मेरी जेब में कुछ रहता हो, सिवाय खाली उँगलियों रेंगने के। रहता था तो बाबूजी की आँखों में मेरे लिए देखे गए सपनों की फेहरिस्त तथा अम्मा की सूनी आँखों के सपने। इन तमाम दर्दों के बावजूद मेरे आस पास के लोग बहुत खुश थे। लड़का खुश था कि आज लड़की ने उससे बात की और लड़की खुश थी कि मालिक ने तनख्वाह बढ़ा दी। मालिक खुश था कि लड़की ने थोड़ा आगे बढ़ने दिया। कुछ लोग तो मालिन से ही चुहल करके खुश थे। इन तमाम लोगों के खुश होने के बावजूद मैं खुश नहीं था।

कुछ महीनों बाद भाग्यबल मुझे एक निजी विद्यालय में शिक्षक की नौकरी मिल गई। स्कूल में प्रशिक्षण के दौरान हमें यह
सिखाया गया कि छात्रों के बजाय उनके अभिभावकों को कैसे बढ़िया से पढ़ाया जाये। अभिभावक खुश तो सारी समस्या अपने आप हल हो जाती है। विद्यार्थी पढ़े न पढ़े–यह कोई मायने नहीं रखता। घर में होम ट्यूटर तो पढ़ाएँगे ही और

यहीं मुझसे भूल हो गई। वहीं एक–एक आदमी तिलस्मी है। उसकी तहों के भीतर तक पहुँचने में मेरा बहुत–सा वक्त बर्बाद हो रहा था। तब भी बहुत कम लोग हैं इस शहर में जिनको मैं जान सका। जिन्दगी मेरी गारत हो रही थी। मजबूरन मुझे घर वापस होना पड़ा।

घर का खर्चा बढ़ गया था। बाबूजी की तनख्वाह कम पड़ रही थी। एक दिन स्कूल के दफ्तर से लौटते हुए उन्होंने खुशी–खुशी बताया, 'आज वो काम मार लिया, अब परेशानी के दिन खत्म। मुझे पार्ट टाइम काम मिल गया है, आखिर इतने दिनों का सरकारी काम का अनुभव जो है। सेठ बंशीलाल की फर्म में शाम को हिसाब–किताब का मिलान करना होगा। बस, तीन घंटे रोज .. .. और सौ रुपये पक्के। मुझे तो उन्होंने हाथोहाथ लिया और तो और, पेमेंट भी एडवांस कर दी। बाबूजी ने कोट की जेब से (जिसका बस्तर भी फटा हुआ था) पचास–पचास के दो नोट निकाले और एक दीदी के हाथ में एक मेरे हाथ में रख दिया। अम्मा फफक–फफककर रोने लगी थी। मेरी आँखें डबडबाकर धुंधला गई थीं और मुझे पूरे वातावरण में सिर्फ बाबूजी ही दिख रहे थे। यह दृश्य भी मेरे मन के किसी कोने में आज भी विद्यमान है।

अच्छा चलता हूँ, पहले ही दिन लेट नहीं होना चाहिए। उन्होंने जैसे ही छाता उठाया था कि खाँसी का तेज दौर उठा। शायद उन्होंने अबतक खाँसी दवाये रखी थी। इसलिए जो खाँसना शुरू किए, तो रुका ही नहीं, छाती पकड़ एकदम बेदम–सा होकर बैठ गए। हम सबने उन्हें सँभाला, तो आवाज में बहादुरी लाते हुए बोले–'कुछ नहीं हुआ, मुझे बस खाँसी है। तुम लोग अपनी–अपनी चिंता करो। अब अपने पैरो पर खड़े होने की कोशिश करो। जीते–जी तुमलोगों को आत्मनिर्भर देखना चाहता हूँ। मेरा कभी भी कुछ हो सकता है, पूरी ताकत लगाकर उठे। छाता उठाया और चल पड़े। कभी भी। वह फिर हाँफने लगे थे; लेकिन

जाड़ों की शाम थी। बाहर घना कुहरा था। मैं बाबूजी को कुहरे में आगे बढ़ते देखता रहा, जब तक कि वे सिकुड़ते–सिकुड़ते एक काला बिंदु बनकर बिल्कुल घुल न गए।

आप पतियाएँ या नहीं, पर उस समय मेरे भीतर एक ज्वाला धधक रही थी, जो आज भी मेरे मन के तहखाने में परत–दर–परत तेज लपटों के साथ धधक रही है।

गजलें

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा धार मप्र
मो 9893119724

1
लाख आँसू हमारे ढ़लते हैं।
लोग पत्थर कहाँ पिघलते हैं।

जान पायेंगे हम उन्हें कैसे,
शक्ल पे शक्ल जो बदलते हैं।

शूल महफूज रहते शाखों पर,
फूल पेरों तले कुचलते हैं।

ये जमाना है अजनबी उनसे,
जो घड़ी भर कहीं निकलते हैं।

बात हो आपकी असर कैसे,
आप कहते जिसे फिसलते हैं।

2
अगर मेरी कही वो मान लेगा।
सभी मर्जी मेरी पहचान लेगा।

लगाकर और इक इल्जाम मुझपर,
कहाँ मुझसे मेरा ईमान लेगा।

चुकाएगा सभी बदले पुराने,
सजा देगा कि मेरी जान लेगा।

कभी रहता नही अपनी रजा पर,
कहाँ तक और का फरमान लेगा।

चला है कारवाँ जिस रास्ते पर,
नजर उस ओर अपनी तान लेगा।

जरूरत या वजह के काम सब वो,
करेगा तब उसे जब ठान लेगा।

3
खुशी देखी नहीं जाती।
हँसी रोकी नहीं जाती।

लबों की चुप्पियाँ मुश्किल,
जुबाँ भी सी नहीं जाती।

रिवाजों, कायदों से डर,
वफा तोड़ी नहीं जाती।

सभी कुछ पा लिया लेकिन,
कमी अपनी नहीं जाती।

जुदा है मामला दिल का,
लगी इसकी की नहीं जाती।

4
तीर लगते नहीं निशाने तक।
पाँव उठते नहीं ठिकाने तक।

अश्क पलकों में आ ठहरते हैं,
वो छलकते नहीं रुलाने तक।

डूबते तो सभी ने देखा था,
कोई आया नहीं बचाने तक।

ताश के घर–महल बनाते हो,
ये संभलते नहीं जमाने तक।।

हाल है इन तमाम रिश्तों का,
साथ चलते नहीं निभाने तक।

आग अंदर है अलग बाहर से,
ये सुलगती नहीं बुझाने तक ।

5
अश्क सारे बहा लिए जाएँ।
राज दिल के जता लिए जाएँ।

आज गफलत नहीं रहे कोई,
दर्द सब आजमा लिए जाएँ।

काम आसान हो सभी अपनें,
हाथ सबसे बँटा लिए जाएँ।

उन रिवाजों से इन रिवाजों के,
बीच रस्ते बना लिए जाएँ।

मेजबानी के हाल –मौके पर,
सब बिखेरे जमा लिए जाएँ।

दूसरों से जरा सबक लेकर,
हाथ अपने बचा लिए जाएँ।

कहानी :

अंतिम इच्छा

शुभदा मिश्र
पटेलबाई, डोंगरगढ़ (छ.ग.)
मो–8269594598

अंततः मुझे फाँसी की सजा सुना ही दी गई... हैंग टिल डेथ। माननीय न्यायाधीश ने अपनी कलम की निब तोड़ी और उठकर अपने कक्ष में चले गए। जयघोष करती अदालत उठ खड़ी हुई। बाहर खड़ी भीड़ विजय दुंदुभि बजाने लगी। उत्तेजित नारों से सारा आसमान गूंज उठा–''फाँसी ऐसे नहीं, चौराहे पर होनी चाहिये... फाँसी के पहले सब लोग इसे जूते लगायें, इसकी वह गत बनायें कि बलात्कार का ईरादा रखनेवाले दहशत में आ जायें।''

पीड़िता के माता–पिता विह्वल हैं। हाँ, हमारी बेटी को न्याय मिला है। उसकी आत्मा को शांति मिलेगी।

धाकड़ वकील खुश हैं, आखिर हमने पीड़िता को न्याय दिला ही दिया। मेरे लिए लड़ने वाले वकील कह रहे हैं–हम महामहिम राष्ट्रपतिजी से दया की प्रार्थना करेंगे। अपराधी का कोई पूर्व आपराधिक रिकार्ड नहीं है। उसकी उमर ही क्या है। उसे तो समझ ही नहीं आ रहा है, उससे क्या हो गया।

–हाँ, मुझे समझ नहीं आ रहा है, मेरे साथ क्या हो रहा है, मुझसे कैसे क्या हो गया? चेतनशून्य–सा जंजीरों से लदा पुलिस के घेरे में लिये जा रहा हूँ। लोग मुझपर जूते–चप्पल फेंक रहे हैं, थूक रहे हैं, घृणा से फुत्कार रहे हैं–देखो–देखो, हत्यारे बलात्कारी को, चेहरे पर कोई ग्लानि नहीं, पश्चात्ताप नहीं। दिखता कैसे भोला–भाला मासूम है। है अच्छा पढ़ा–लिखा, अच्छी खासी नौकरी भी थी, मगर संस्कार नहीं तो सब बर्बाद। अगर माँ ने सही संस्कार दिये होते, तो बेटा कभी बलात्कारी बन पाता! बलात्कारी, हत्यारा, थू है ऐसी माँ पर..
.

थू है ऐसी माँ पर, माँ ने संस्कार दिये होते... मेरे 'चेतन शून्य' से जेहन में हथोड़े की तरह चोट कर रही है यह बात। चेतना जागने लगी है... फाँसी की काल कोठरी पर अर्धविक्षिप्त पड़ा मैं इस विषाक्त तीर से लहुलूहान हो गया हूँ। क्या माँ ने संस्कार नहीं दिये? क्या मुझे जन्म देनेवाली माँ इस तरह हजारों लोगों से थूके जाने योग्य है...

नहीं, मेरा रोआँ–रोआँ चीत्कार कर रहा है... यह आरोप बर्दाश्त से बाहर है। मैंने सारे आरोप स्वीकार किये साजिश के, बलात्कार के, हत्या के, मगर यह आरोप मैं स्वीकार नहीं कर सकता। माँ–बाप को, घर–परिवार को, कुल–खानदान को, सात पीढ़ियों को कलंकित करने वाला है–यह निर्दयी क्रूर आरोप। मैं काल कोठरी में सड़ता दुर्दान्त अपराधी, इस आरोप को चीख–चीखकर इनकार करना चाहता हूँ। मेरी चीखें मेरे सीने में ही घुटकर बवाल मचा रही है। क्या लोग सचमुच नहीं जानते, संस्कारों को कौन बर्बाद कर रहा है। अच्छे–से–अच्छे संस्कारशील व्यक्ति को कौन बलात्कारी बना रहा है? आप जानते हैं, पत्रकार जानते
हैं, राजनेता जानते हैं, माननीय न्यायाधीश भी जानते हैं, अजी बच्चा–बच्चा जानता है, पर कोई मुँह नहीं खोल रहा है, तब आसन्न मौत की मूर्छा में पड़ा इस दुर्दान्त अपराधी को ही बोलना पड़ा है। अब नहीं बोलेगा, तो कब बोलेगा?

जी हाँ, मेरा भी परिवार था। कैसा सुंदर! कैसा प्यारा! अपने प्यारे देश की संस्कृति के रस–रंग में रचा बसा। भोर की मीठी–मीठी नींद में बिस्तर पर पड़ा है उनींदा बालक, पूजाघर से आती दादी के आरती की मधुर घंटियाँ पूरे घर में नयी चेतना, नवजीवन का संचार कर रही हैं... कनकमय मोर मुकुट बिलसै, देवता दर्शन को तरसै, गगन से सुमन बहुत बरसै, बजे मुरचंग, मधुर मृदंग, ग्वालिनीसंग, अतुलरति गोप कुमारी की, आरती कृष्ण मुरारी की... उनींदे पड़े बिस्तर पर ऐंढ़ते बेटे को भी जगा रही है–उठ–उठ, बेटा! छह बज रहे हैं। स्कूल बस आ रही होगी।

मगर स्कूल में अलग दृश्य है। महँगे निजी स्कूल में पढ़ता हूँ मैं। अंग्रेजी माध्यम है। नन्हें–नन्हें बच्चे गाते हुए अभिनय कर रहे हैं, ''बाबा ब्लैक शिप, हैव यू एनी वूल। यस सर यस सर श्री बैग फुल।'' गीत हमारे घर–परिवार के माहौल से बिल्कुल अलग है। भारतीय जनजीवन से ही अलग है। गीत ही नहीं, सभी बातें। यहाँ तो है... पैसे की चमक, हैसियत की धमक। कच्चे चिट्ठों की झलक भी। बच्चों की बातों में भी 'हनी के पापा' फिर पकड़ा गए। प्रिंस के मम्मी–पापा में तलाक हो गया है। प्रिंस की मम्मी बहुत झूठी है। प्रिंस के पापा उससे भी ज्यादा। प्रिंस कहता है, मैं भाग जाऊँगा। डेजी मैम की खुली पीठ इतनी चमकती है
कि मन करता है... चाक फेंककर मारूँ...

घर का वह माहौल, स्कूल का यह। दोनों के बीच झूलता मैं। मगर अभी तो और झुलैया है। बच्चों की नखरीली जन्मदिन पार्टियों, खेल के मैदान की शातिर चालबाजियाँ, फिर कोचिंग की मजबूरियाँ। कोचिंग कई एक है। अंग्रेजी की कोचिंग, गणित की कोचिंग, विज्ञान की कोचिंग–यह सब तो है ही, पेंटिंग की कोचिंग, गाने की कोचिग, नाचने की कोचिंग, बोलने–बतियाने, सर्वांगीण उन्नति कराने की दावा वाली कोचिंग। कोडिंगों की लुभाती, ललचाती दुनिया। विज्ञापनों के फेर में पड़े मम्मी–पापा। कभी इस कोचिंग में ले जा रहे हैं, कभी उस...नहीं, वहाँ टीचर अच्छे नहीं है। यहाँ तो टीचर, मैनेजर, बच्चे सब चालू। बच्चों के भी बाप इन सबसे ज्यादा चालू... कौन चालू, किस चालू को उल्लू बना रहा है, कौन किसका शोषण।

बाहर की ये अजनबी हवाएँ भीतर के संस्कारी को लगातार चोटिल कर रही हैं।

उम्र बढ़ रही है, कक्षाएँ भी बढ़ती जा रही हैं, दायरा भी। ज्ञान का दायरा। समझ का दायरा। ज्ञान का दायरा विषयों तक, जितना पाठ्यक्रमों में था। समझ का दायरा दूर–दूर तक। मूल संस्कार लगातार मार खा रहे हैं, लोक–व्यवहार हावी हो रहे हैं, इनको विश करो, इनको गुड मार्निंग, गुड इवनिंग, थैंक्स, टाटा, बाय–बाय। इनको नमस्ते। इनके पैर छुओ। सिखाते–सिखाते सबके स्याह सफेद भी उजागर होते जा रहे हैं। दादा–दादी, नाना–नानी, चाचा–चाची, बुआ–फूफा, मामा–मामी, मौसी–मौसा, लगभग सभी
रिश्तेदारों के। मित्रों, बंधुओं, पड़ोसियों, परिचितों, हर किसी के सामने धवल प्रणाम पाती। साथ चले आ रहे हैं.. स्याह धब्बे भी। घर में अक्सर होती मम्मी–पापा की काँय–काँय ही उजागर कर रही है–''तुम्हारे बाप तो कार नहीं मिलने पर बारात ही लौटा रहे थे और तुम्हारे बाप! तुम्हारे बाप कंजूस, बरातियों को घासफूस खिलाकर टरका रहे थे। तुम्हारे दादा...। अरे, तुम्हारी तो दादी भी। तुम्हारे खानदान... अरे, मैं मुँह खोलूँगी, तो कहीं के न रहोगे।'' पहले अपने ही घर परिवार के स्याह–सफेद, फिर अड़ोस– पड़ोस, मित्रों–परिचितों के, अपरिचितों के भी। 'अपने सामने वाली बिल्डिंग में जो नया किरायादार आया है, पता चला, भारी डिफाल्टर है। जी हाँ, लोगों के रौब–रुतबे की चमक दिखती तो है, पर साथ चले आते स्याह धब्बे ज्यादा असर कर जाते हैं। आसपास के लोगों के होते–होते, दूर के लोगों के भी होने लगे। जिन्हें देश के महापुरुष माना जाता रहा, उनके भी। उनके स्याह चिट्ठे उजागर करने में जाति और धर्म के नित नये उभरते नेता माहिर। अपनी जाति, अपने संप्रदाय के लोगों पर पड़ता भी उनका प्रभाव। प्रभाव और बढ़ा, हो गये अपनी जाति, अपने मजहब के मसीहा। महाबली। जारी कर दिया

फतवा...''हमारी जाति के अमुक महापुरुष ने ही असल में आजादी दिलाई। महान् त्याग किया। बलिदान दिया। उन्हें कमतर आँका जा रहा है। उन्हें यह सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार हैं। अजी, हमारी जाति को ही कमतर करके आँका जाता रहा है। अमुक–अमुक जाति, संप्रदाय के लोग छाये हुए हैं देश में। मलाई उन्हीं के हिस्से। हमें फेंकी हुई रोटी। यह भी मुश्किल से। सो बंधुओं हमें अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी है। हमारी माँगें हैं। नहीं माँगी गई, तो देश में बवाल मचा देंगे। माँगने से हक नहीं मिलता। छीनना पड़ता है, लड़ना पड़ता है। प्रजातंत्र में हक है लड़ने का।

बवाल मचाने तैयार बैठे हैं ये नेता। एक नहीं अनेक। अपनी–अपनी जाति, अपने अपने धर्म के महाबली। अपने–अपने भक्तों–अनुयायियों के दम पर। देश–विरोधी शक्तियों की राह पर। सतर्कता न बरती गई, तो गृहयुद्ध करा दें। कुछेक तो बेधड़क देते रहते हैं 'बलवे की धमकी।'

ऐसे सब माहौल में हो रही है पढ़ाई। चल रहे हैं स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, बाजार–हाट, अस्पताल, कचहरी–अदालत, सारा तंत्र। सारे कारोबार। कुछ बहुत प्रभावित। कुछ जरा कम। कुछेक अप्रभावित भी। पर आसन्न संकट की छाया, तो मँडरा रही हर कहीं, कब कौन–सा बवाल पूरे देश को चपेट में ले ले...

और ऐसे ही माहौल में नामी–गिरामी स्कूल, कॉलेज की अजीबोगरीब भूल भुलैयों को कड़ी मेहनत से पार करता मैं हो ही गया कंप्यूटर साइंस में स्नातक। नामी कंपनी का 'कैंपस प्लेसमेंट चुनाव'। मैं भी चुन लिया गया। मुश्किल से तेईस बरस की उम्र और हजारों रुपयों की नौकरी। मम्मी–पापा खुश। दादा–दादी चकित। उनके जमाने में तो सौ–डेढ़ सौ की नौकरी भी भारी नियामत। मगर ये नौकरी थी दूर दक्षिण में। आधुनिक टेक्नोलॉजी के लिए विख्यात शहर है यह। मगर टेक्नोलॉजी का तो युग ही है। सबके पास कीमती मोबाईल। रोज बात करो। 'विडियो कालिंग' करो। मम्मी से, पापा से, भाई–बहन से, मित्रों परिचितों से। दूरी की अब कोई समस्या ही नहीं। तब भी मुझे विदा करने पूरा परिवार स्टेशन आया। भावभीनी विदाई दी। पापा तो मेरे साथ चले। जिस कंपनी में मुझे काम करना था, उसकी भव्य इमारत देखी। मेरे रहने की व्यवस्था की। उन्हें विदा करते हुए मैंने उनके पैर छुए। उन्होंने दोनों बाहों से उठाकर मुझे कसकर गले लगा लिया। आँसुओं की धार बह निकली। आँसू पोंछते वे ट्रेन में चढ़े। आँसू पोछता हुआ में अपने कमरे में लौटा।

मेरे कमरे के साथी दो और युवक थे। हमारी ही कंपनी के थे अलग–अलग शहरों के। पर जल्दी ही घुल–मिल गये। सुबह जल्दी–जल्दी तैयार होकर नाश्ता करते। नाश्ता प्रायः ऑनलाइन मँगा लेते। कभी–कभी खुद भी कुछ बना लेते। साथ निकलते। अलग–अलग विभागों में थे। लौटते तो मिलते। रात का खाना साथ ही खाते होटल में। गपशप करते एक–दो पेग भी ले लेते। मस्तिष्क में तरावट आते ही घरवालों से बातें करते। मोबाईल के पर्दे पर एक दूसरे को देखते। खुशी छलक पड़ती। वे सब मुझे लेकर आश्वस्त हो गये। चार दोस्तों से भी बातें होती। मोबाईल हाथ में रहता ही। मोबाईल में भरी सारी दुनिया। खाये–पिये मस्त हम तीनों रात गये लेटे–अधलेटे, देखते रहते मोबाइल का तिलस्म। यूट्यूब, फेस बुक, इंस्ट्राग्राम, ट्वीटर। अनायास ही हम फेसबुक ज्यादा देखने लगे... महात्माजी लोगों के प्रवचन, प्रश्नोत्तर। अच्छे तो लगाते, पर लगता, अभी यह सब जानने–समझने का हमारा समय नहीं हैं। समय है देश दुनिया में छाये महाबलियों को सुनने समझाने का। सो सुनते, नामी बुद्धिजीवियों के दिमाग की चूलें हिला देनेवाले क्रांतिकारी आह्वान। धाकड़ राजनैतिक नेताओं की भेजा उड़ाती धुआँधार बहाने, विभिन्न जाति और धर्म के महाबली नेताओं की दहशतअंगेज तकरीरें। चूँकि अपने अपने धर्म और जाति के नेताओं का कुछ असर तो पहले से ही था, अब यह सब देख–सुनकर हमारा दिमाग बेकाबू–सा होने लगता। कई बार हम आपस में ही लड़ बैठते। लड़ इसलिए बैठते कि हम तीनों अलग जाति, अलग संप्रदाय, अलग प्रदेशों के थे। एक रात तो इतने उत्तेजित कि कौन किसका सिर फोड़ दे कि सामने चल रहे मोबाइल में दृश्य आ गया। लड़ना भूल हम अवाक् देखने लगे। संभोग का दृश्य। खुला नग्न। हमारे शरीर सनसनाने लगे। पिघलने लगे। हालत खराब। पस्त। मगर दृश्य रुके नहीं। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा। हर दृश्य ज्यादा उत्तेजक। ज्यादा मारक, बल्कि घोर संघातक। हालत इतनी बर्बाद कि हम पशुवत् अप्राकृतिक हरकतें करने लगे। रात, सारे संस्कारों को धो गई...।

अगले दिन हमने तय किया कि हमें यह सब बिल्कुल नहीं देखना है। हमें तो बहुत आगे जाना है। एक–से–एक बढ़िया विडियो है, मनोरंजक, ज्ञानवर्धक, आह्लादकारी–यही सब देखें। वैसे शुरू–शुरू में जब हमने यह स्मार्ट मोबाईल लिया था, तब भी ये पोर्न विडियो सामने आ जाते थे। पर जब हम उन्हें टच करते, तभी खुलते। सो हम उनका शीर्षक देखते ही खिसका देते थे। वे हमारी गहन पढ़ाई के दिन थे, हम अपने काम के विडियो देखते; लेकिन अब स्थिति एकदम अलग। अब तो जैसे टी.वी. के कार्यक्रमों के पहले प्रायोजित विज्ञापन चले आते हैं, बेमन से चलने देते हैं, लोग ऐसे विज्ञापन कि इसके बाद आयेगा हमारा पसंदीदा कार्यक्रम। ठीक वैसे ही हम कोई पसंदीदा विडियो देखना चाहते कि चले आते पोर्न विडियो। बिना टच किये ही। हम चलने देते कि इसके बाद आयेगा हमारा पसंदीदा कार्यक्रम। मगर ये विडियो कुछ ऐसे थे कि हमारी जिज्ञासा बढ़ा जाते कि जरा इसे देख ही लें। जिज्ञासा बढ़ती गई। आगे देखते गये। हर विडियो सेक्स का कोई नया ही पाठ पढ़ा जाये। पढ़ा जाये कि सेक्स के लिए एप्रोच कैसे किया जाये। सामनेवाला पट जाये, तो आगे कैसे बढ़ा जाये। बढ़ गये, तो विभिन्न मुद्राओं में मजा कैसे लिया जाये। मगर एक स्त्री एक पुरुष में क्या मजा। ज्यादा मजा है एक स्त्री कई पुरुष, उससे भी ज्यादा मजा एक पुरुष कई स्त्री। आगे कई पुरुष कई स्त्रियों। सेक्स सुख जीवन का चरम सुख। अधिकाधिक सुख लूटने के एक–से–एक तरीके। देखते–देखते हम सकते में आ गये। हम यह क्या देख रहे हैं। सामने जो दृश्य दिखाया जा रहा है, यह तो पूरी तरह एक परंपरागत भारतीय परिवार का दिख रहा है। दीवारों में देवी देवताओं की तस्वीरें। दरवाजे पर शुभलाभ, स्वास्तिक, जैसे हमारा ही घर–परिवार हो। एक संपन्न सुशिक्षित भारतीय परिवार। शिष्ट शालीन से पुरुष। महिलाएँ विशुद्ध भारतीय वेशभूषा में। सुंदर साड़ियों में सजी, सिंदूर, बिंदी, मंगलसूत्र में मधुर मालिनी–सी आदर्श गृहिणी। घर–परिवार को सेवाएँ देती। प्यार लुटाती। पर 'यहीं पर पेंच। शातिर पेंच।' ऐसी सुशील नारी के प्यार–दुलार, संवाद, सत्कार में बड़ी होशियारी से कामुक हाव–भाव दिखने लगते, मानो सेक्स के लिए निमंत्रण दे रही हो। पहले लगा, शायद भ्रम हो रहा है। मगर नहीं, वास्तव में निमंत्रण था। निमंत्रण किसी को भी–देवर, जेठ, ससुर, पड़ोसी, परिचित, जिसपर उसका दिल आ जाये कि यही उसे चरम सुख दे सकता है। दिल आ गया, तो मर्यादा की ऐसी तैसी। कब, कहाँ, कैसे सारे जुगाड़,
खुद ही बैठा ले। कहीं का बाप, कहीं का भाई। कहीं का पुत्र। बेटे को सिखा रही है–बेटा! जरा जोर लगा के। संबोधन यथावत् संबंधोंवाले ही हैं, पर सेक्स तो संबंधों से ऊपर है न। जीवन को चरम सुख देनेवाला दुनिया का परम सत्य। पुरुष तो इस चरम सुख के लिए तरसते ही हैं। तलाशते ही रहते हैं। घर में ही मिल जाये, तो कैसा परहेज, जब अगले की नजर बता रही है कि यह तो लालायित बैठे हैं।

सकते में बैठे रह गये हम उन विडियो को देखते। छोड़ नहीं सके। कारण कि वे सेक्स की दुनिया का कोई नया कपाट खोलते से लगते। नया कपाट, नया पाठ कि सेक्स तो एक नैसर्गिक चीज है। जीवनदायिनी ऊर्जा है।

यह ऊर्जा सबमें है। पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष। सकल चराचर जगत में। अनादि काल से दुनिया इसी ऊर्जा के बल पर चल रही है। यह ऊर्जा निकल न पाये, तो प्राणी बेचैन छटपटाता रहता है। मनुष्य भी। निम्न तबके के लोगों में बहुत कड़े प्रतिबंध नहीं। पर प्रतिबंध है सभ्य समाज के लोगों में। पुरुष जुगाड़ करते रहते हैं, इसकी संतुष्टि के लिए। मगर सामाजिक दायरों में रहती महिलाएँ छटपटाती रहती है। विशेषकर इसलिए कि सेक्स की प्यास उनमें पुरुषों से कई गुना अधिक होती है। वे छटपटाहट दवा के घुट–घुटकर जीती रही हैं। दबी कुचली स्त्री बनी अपने ही भीतर सुख का खजाना दबाये; लेकिन स्त्री–विमर्श वाले योद्धाओं ने इतना शोर मचाया कि सारी दुनिया ही उनकी पक्षधर हो गई। अंततः प्रतिबंध टूटे। सशक्त हुई। कुछ मर्यादायें लाँघी। मर्यादाएँ लाँघने का स्वाद चखते ही मानो छूट मिल गई। कुछेक तो सामाजिक बंधनों की ऐसी तैसी कर खुलेआम 'सेक्सशिबल' बन वाहवाही लूटने लगीं। और बाकी? बाकी के लिए ये विडियो बता रहे हैं कि सामाजिक दायरे में रहते
हुए भी दुर्लभ सेक्स सुख अप्राप्य नहीं। घर में ही है साधन। साध्य। जिस आग में वह जल रही हैं, उसी में अगले भी तो। इन दुनियायी रिश्तों के चलते भीतर की आग अब और अतृप्त नहीं रह सकती। तलाश रही है आँखें, कौन चरम सुख के शिखर पर पहुँचा सकता है. खेले खाये अनुभवी बुढऊ कि रौबीले दिखनेवाले प्रौढ़, कि गबरू जवान कि कमसिन बालक कि...

अगले की नजर भी तो अब यही सब तलाश रही है।

नहीं, यह कोई चकलाखाना नहीं है। बकायदा घर है। परिवार है। सारे रिश्ते हैं। एक दूसरे से रिश्तेवाले संबोधन से ही बातें कर रहे हैं। संबंध बनाते हुए भी। यह संबंध जिन्हें सभ्यभाषा में कहते हैं–अवैध संबंध। व्यभिचार। संबंध किसका किससे कब। जिसका जिससे जोड़ मिल जाये तब। चरम सुख हमारा हक।

और गलत सही, विचार, आचार, संस्कार, पापाचार? पुरानी बकवास।

फिर हम ही कौन–से महान् गुरुकुल में रहकर पढ़े थे। सियाह सफेद गड़गड़ अस्पष्ट माहौल में पले, बढ़े, पढ़े। यहाँ तक पहुँचे। अब इस नामी कंपनी के भी सियाह सफेद को भी तो सहज स्वीकारते हीरो बने हुए हैं। धारोंधार बह गये। कॉलेज के दिनों में भी कुछेक पोर्न विडियो हमने देखे थे। कुछ लड़के उसी में लगे रहते, उन्हीं के साथ। मगर उनके पात्र विदेशी थे। किस देश के थे समझ नहीं आया था। पर यह तो जैसे हमारे ही घर–परिवार के पात्र। हमारी ही माँ–बहनें। घात लगता, पर मगर बहाव तेज थी। आघात झेलते, बेदम होते, आत्महीन शव से बहे चले जाते। शवों में तो पैशाचिक आत्माएँ प्रवेश करती ही है। लगता है हममें भी प्रवेश कर गई थीं। हमें तो अब अप्राकृतिक सेक्सवाले दृश्य भी आनंद देने लगे थे। स्त्री के साथ किन्नर। पुरुष के साथ किन्नर। किन्नर ही नहीं जानवर। जानवर ही नहीं लौकी, बैगन, तुरई...।

और एक रात हम यही सब देखते अपनी गत बना रहे थे कि ध्यान आया अमित नहीं आया है। उसे फोन किया–अबे! जल्दी आ। एकदम हॉट सीन आ रहा है। बोला–बेटा! तुम हॉट सीन देखते रहो, हम तो खुद हॉट सीन बने उड़ रहे हैं।

सुबह बताया उसने... साथ में काम करती है। नाम डॉली है। मुझे ताकती रहती थी। हाय, 'हॅंडसम' कहकर बुलाती थी। आखिर पूछा... क्या ईरादा है। बोली.. वही, जो तुम्हारा है। बोला–तो चलें। बोली...बिल्कुल। खुद ही बताई होटल 'चाँदनी' चलें। वाकई होटल चाँदनी बढ़िया होटल है। ऐसी 'जोड़ी' को सब सुविधाएँ देता है। कपड़े पहनती साफ बोली... मेरी कुछ सहेलियों बढ़िया दमदार साथी चाहती है, जो पूरा मजा दे सकें। तुम्हारे ऐसे दोस्त हों तो ले आओ।

और आँधी में बह गये हम। होटल चाँदनी से जो शुरुआत हुई, तो होटल स्वागतम्, कहकशाँ, जन्नत। घरों में भी मस्त डांस पार्टी। पार्टी में शराब, ड्रग्स, म्यूजिक, नाच–गाना, सेक्स। सूनसान जगहों में रेवपार्टी, रंगीले पिकनिक...। मजे लेने की तकनीक में माहिर, मजे देने के दावे ठोंकते दशों दिशाओं से आते युवा, किसी स्कूल, किसी कॉलेज, किसी ऑफिस, किसी मॉल, अस्पताल, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे–कहीं से भी। आँखें बस यही परखती... सामनेवाला कितना सेक्स सुख दे सकता है। आगे से कि पीछे से कि ....

कि मेरा तबादला हो गया। तरक्की के साथ। दूसरे बड़े शहर में। घर में बातें अब कम होती थीं। पर तबादला हुआ, तो बताना ही था। तरक्की जान सब खुश। मम्मी–पापा जोर देने लगे, नई जगह कार्यभार सँभालने के पहले घर आ जाओ। बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं है। तुम्हें सब मिस कर रहे हैं। पापा हवाई अड्डे ही आ गये थे लेने। विह्वल हो गये मेरा भरा पूरा जवान शरीर देखकर। मैंने पैर छुए। उन्होंने गले लगा लिया। घर पहुँचे। घर स्वागतम् में सजा। दरवाजे में अलमलाता शुभ बंदनवार। नीचे मनोहारी अल्पना। माँ छाती से लगकर रोती रहीं। भाई–बहन एकदम लिपट गये। पूरे घर में प्रेमरस बरस रहा है। घेरकर बैठ गये हैं मुझे। मेरी नई जिंदगी के बारे में जानने को आतुर। मेरी दिनचर्या, मेरी नौकरी, मेरे मित्र। सहकर्मी। बॉस। लोग। ऑफिस के, शहर के। मैं हीरो बना बड़ी–बड़ी हाँक रहा हूँ। मेरी पसंद के व्यंजनों की खुशबू पूरे घर में फैल रही है। बहन कह रही है–भैया, ये डिश मैंने बनाई है। पहले इसे चखो। पापा मित्रों को फोन कर रहे हैं–नहीं, आज बैठक में नहीं आ सकता। आज तो घर में ही जश्न है। मेरे राम आये हैं।

यह सब मुझे अच्छा, तो लग रहा है। मगर मेरी दृष्टि तो आदी हो चुकी है कुछ और ही देखने की। माँ का भरा–भरा शरीर मुझे कुछ और ही दिखने लगा है। मैं उनके शरीर की तरफ देखने से कतरा रहा है। सिर्फ चेहरा देखता हूँ। उसमें भी गड़बड़ा जा रहा है। मगर माँ थोड़ी साड़ी हटाकर कमर के नीचे का हिस्सा दिखा रही है–'यहाँ नस ने पकड़ लिया है बेटा, चलने–फिरने–बैठने तक में इतना दर्द है कि बता नहीं सकती।' बहन मेरा लाया टॉप पहन कर पूछ रही है–'भैया, मैं कैसी दिख रही हूँ।

मेरे भीतर तूफान मचा है, ठीक यही सब डायलॉग, यही सूरत शकल बदन, पहिरावा उन वीडीओ में दिखनेवाली महिलाओं के भी थे। रात अपने कमरे में बत्ती बुझाकर सोने ही वाला था कि बहन पानी का गिलास लेकर आई। मैं एकदम भड़क उठता–'क्यों लाई पानी।' बोली–'भैया! रात में कभी तुम्हें जरूरत पड़े।' मैं बिगड़ता रहा। 'जरूरत लगेगी, तो मैं खुद किचन में जाकर निकाल लूँगा।' ज्यादा होशियारी मत दिखा। बहन गिलास रखकर भागी। मैं सिर पकड़कर बैठ गया, यह क्या हो गया है मुझे।
सारी रात मुझे नींद नहीं आई। इन लोगों के पास भी तो वहीं मोबाईल हैं। इन लोगों के पास भी तो आते होंगे, वही सब पोर्न विडियो। इन पर भी जरूर असर होगा। मम्मी इस उमर में दिखती कितनी सेक्सी है, पापा कमजोर, कहीं। और ये बहन। आँखें कैसे मटकाती रहती है। कपड़े कैसे देह उधारे।

जरूर छोटे भाई के साथ इसका भीतर घुस आई पैशाचिक आत्मा बहुत कुछ उघाड–उघाड़कर दिखाती रही रात–भर। सारी रात अंधड़–तूफान, तहस–नहस। सुबह लुटापिटा–सा उठा मैं। पापा को बता दिया–मेरे पास मैसेज आया है। मुझे फौरन नया कार्यभार लेना बहुत जरूरी है। मैं पहली फ्लाईट से निकल लेता हूँ। वे सब हतवाक, अडोल। ठीक से विदा भी न दे पाये।

नये शहर में मुझे बढ़िया फ्लैट मिल गया। सभी सुविधाओं से युक्त। सुसज्जित। कंपनी ने दिया। मगर अभी नया काम समझ रहा था। काम का बोझ भी बहुत ज्यादा। रासरंग का समय ही नहीं। रात गये थका हुआ आता। पीता। सो जाता।

मेरे सामनेवाले फ्लैट में एक परिवार रहता था। बुजुर्ग पति, पत्नी। बेटा–बहू। उनकी एक छह सात साल की बेटी। उन लोगों को जरूर उत्सुकता

रही होगी, सामने फ्लैट में आया युवक कैसा है। सो एक रविवार बुजुर्ग स्वयं मेरे फ्लैट में आये और मुझे चाय पर निमंत्रित कर गये। चाय पर पूरे परिवार से परिचय हुआ।

बुजुर्ग अवकाशप्राप्त प्राचार्य थे। बेटा बैंक ऑफिसर। दोनो महिलायें सुशिक्षित गृहिणियाँ। बच्ची कक्षा तीन की छात्रा। मेरा परिचय जानकर खुश हुए कि भले परिवार का लड़का है। पूछने लगे शादी कब कर रहे हो। मैंने कहा, मम्मी–पापा लड़की देख ही रहे हैं। अब जब बात जम जाये।

बुजुर्ग प्रेमी जीव थे। पर्व–त्योहारों में तो जरूर मुझे बुला लेते। मैं उन्हें पैर छूकर प्रणाम करता। खूब आशीर्वाद देते। बढ़िया खिलाते–पिलाते। गप्पें मारते। घर–परिवार, समाज मौसम, राजनीति, अपने शैक्षणीय, प्रशासकीय अनुभव, बातों का खजाना था उनके पास। बेटे को फुरसत नहीं। मुझे सुनाने के लिए ललकते रहते। कभी मैं शाम को जल्दी आ जाता, तो बच्ची आ जाती। हाथ पकड़कर खींचने लगती–चलिये–चलिये, अंकल! दादाजी बुला रहे हैं।

एक सामान्य सुंदर हँसता–खेलता परिवार। मानो स्वर्ग। पर मेरी आँखें तो कुछ और ही देखने की आदी हो चुकी थीं। मुझे तो बुजुर्ग आँटी भी सेक्सी दिखतीं, बहू भी। यहाँ तक कि छोटी बच्ची के यौवनांग भी दिखने लगते। भीतर बैठा पिशाच उनके यौवनांगो को उधाड़–उघाड़कर दिखाता रहता। यहाँ आया था, तब से सेक्स का भूखा था ही। दिमाग अजीब–अजीब सोचता, बेकाबू होने लगता।

ऐसे में उस शाम बच्ची प्लेट में कुछ व्यंजन लिये आई–अंकल! चखकर बताईये, दादी ने बनाया है कि मम्मी ने। मैंने बच्ची को उठाकर गोद में भर लिया और ताबड़तोड़ घूमने लगा। वह हँसते हुये प्रतिकार करने लगी। मैं उसे गुदगुदाने लगा। – गुदगुदी से यह हँस–हँसकर कठलने लगी। मैं उसके कोमल गुप्तांगों को गुदगुदाने लगा। वह एकदम चिल्ला उठी– ''छोड़िये अकिल छोड़िये।'' मगर में अब कहीं छोड़नेवाला था। पागल हो पिल पड़ा। वह बेतहाशा चिल्लाने लगी–''मम्मी मम्मी मम्मी! मैंने उसका मुँह दबाया। यह पूरी ताकत से मेरा हाथ हटाकर आर्तनाद कर उठी–'मम्मी!' मैंने जोर से उसका गला दबा दिया।

बच्ची की आँखें पलट गई। साँस बंद। मुझे होश आया। दिमाग सन्नाटे में कि उसकी मम्मी आ गई। मारे घबराहट के मैंने पास ही खाने की मेज पर रखा चाकू उठाकर उस पर फेंका। वह चिल्लाती हुई गिरी, मार डाला रे! मैं कूदकर उसके पास पहुँचा और चाकू से करने लगा वार–पर–वार ...

और में जेल की सलाखों के भीतर। मेरे जैसे कितने ही बलात्कारी जेल की सलाखों के भीतर। नहीं, सभी जवान नहीं है। बूढे हैं। किशोर भी है। बच्चे भी। अमीर, गरीब, सभी वर्ग, सभी जाति, सभी धर्मों के। सभी प्रदेशों के। पढ़े–लिखे भी, अनपढ़ भी। सभी नैतिक मूल्यों के क्षरण होते समाज के क्षुद्र जीव। सभी को शराब की आदत थी। किसी की महँगी। किसी को सस्ती। बहुतों को नशीली दवाओं की भी। पर मैं अपने और अपने दोस्तों के अनुभव से कह सकता हूँ–नशे के बावजूद, हम माँ को तो महामयी मानते ही थे, बहन–बेटियों के प्रति कभी नीयत खराब नहीं थीं। संबंधों की पवित्रता मानते थे। इस मूलभूत सरकार की योजनाबद्ध तरीके से निर्ममतापूर्वक हत्या की है पोर्न विडियो के सतत प्रहार ने, जो अब हरएक के हाथ में पहुँच चुका है... महलों, अटारियों से लेकर दूर दराज गाँवों में। खेत खलिहानों में। कोने कचरे में। नतीजा बूढ़ी, बच्ची, बच्चे सब शिकार।

नहीं, मेरे घरवालों ने मुझे बचाने की कोशिश नहीं की। रक्षाबंधन के दिन सभी कैदियों की बहनें राखी लेकर आई। मैं डरता रहा। बहन का सामना कैसे करूँगा। मगर बहन आई ही नहीं। माँ ने तो मेरा मुँह तक नहीं देखा। भाई तो कैंडल मार्च निकालने वालों में शामिल था। सिर्फ एक बार पापा आये। मुझसे बिना मिले, मेरे लिए वकील कर गए, इस आशय से कि यह धाकड़ वकील शायद फाँसी को आजीवन कारावास में बदल दे।

मगर जनता हुंकार भर रही है–'बलात्कारी को कुछ और नहीं, बस फाँसी। बीच चौराहे में। शहर–शहर। गाँव–गाँव। गली गली। कहीं मौनजुलूस, कहीं कैंडल मार्च, कहीं उत्तेजक प्रदर्शन, कहीं हिंसा पर उतारू भीड़... गगनभेदी गर्जना.... सरकार क्या देगी... हम देंगे फाँसी....

और मैं हैरान हूँ। इन सबके पास तो वही मोबाईल है। क्या इन सबने नहीं देखे वे पोर्न विडियो, जो नहीं देखनेवालों को भी देखने पड़ते हैं। क्या ये ऐसे महान् संत हैं कि यह सब देखकर भी बेअसर, बेदाग रहे। क्या मैं ही वह नराधम हूँ, जो प्रभावित हुआ। मुझे तो विश्वास है इन प्रदर्शनों में भी मेरे जैसे अनेक बलात्कारी भी शामिल होंगे, ठीक वैसे ही जैसे भ्रष्टाचार विरोधी जुलूस में बड़े–बड़े भ्रष्टाचारी घुसकर भ्रष्टाचार विरोधी नारे लगाते रहते हैं।

फाँसी की काल कोठरी में स्वयं से बतियाते–परखते मेरा ही व्यक्तित्व उघड़ने लगा मेरे सामने। सारे प्रदूषण के बावजूद भीतर कहीं खरा सोना ही था मैं। किस कदर भड़क उठा था उस घड़ी, जब टी.वी. में देखा अपने प्यारे तिरंगे का अपमान। भारत माँ को गंदी गालियाँ। कभी कनेडा, कभी आस्ट्रेलिया, कभी ब्रिटेन में। हो रहे थे विदेशों में। पर यहाँ हमारे खून खौल रहे थे। किसको मार–काट डाले। ये नहीं तो इनके जैसे दिखते लोगों को। मगर ये तो बहादुर लोग हैं। बहादुरी ही तो पहचान है इनकी। ये खुद ही तिरंगे का अपमान करनेवालों को गोली से उड़ा देंगे। हमें इन पर पूरा भरोसा है। देश को इनके देश प्रेम पर पूरा भरोसा है। बस अब आयी, इस देशप्रेमी कौम की जाँबाज प्रतिक्रिया। जोरदार खंडन। पर.... पर.... आने तो लगे सोसल मीडिया में इनके विडियो; लेकिन कुछ अलग ही तरह के। किसी विडियो में ये बाढ़ पीड़ितों की मदद कर रहे हैं। किसी में गरीबों के पास खुद जाकर भोजन वस्त्र बाँट रहे हैं। किसी में किसी परेशान लड़की की इज्जत बचा रहे हैं। इनकी महानता, उदारता, सेवाभाव के एक से बढ़कर एक विडियो। इनके तो मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े, जवान सब महान्। हम अकबक और ये तिरंगा जलानेवाले, भारत माँ को गंदी गालियों देने वाले। ''अरे, वे तो ऐसे ही कुछ भटके हुये सिरफिरे थे। बराबर आते इन महानता भरे विडियो ने धधकती हुई आक्रोश की ज्वाला ही ठंडी कर दी। देशप्रेम की भावना बुझने लगी, तो बुझती ही चली गई। पहले से ही इन लोगों से उलझने में लोग डरते थे। उलझना ही नहीं, कुछ पूछने तक। अब जब ये लगातार जता रहे हैं कि हम महान हैं, तो मानना ही है।''

देशप्रेम की भावना तो गई। सोशल मीडिया में विभिन्न जाति, धर्मों के लोग एक दूसरे पर बेधड़क जहर उगलते दिख ही रहे हैं। देश के महापुरुषों पर कीचड़ उछालना आम बात। बस एक दमदार चीज बची थी 'पारिवारिक गरिमा की।' बहन–बेटियों की इज्जत के लिए जान पर खेल जाते थे लोग। पर इन पोर्न विडियो ने वह भी खतम कर दी। इनमें दिखाये घर, जैसे हमारे ही घर। इनमें महिलायें जैसे हमारे ही घरों की। सुंदर साड़ियों में सँवरी सिंदूर, बिंदी, मंगलसूत्र, विडियो में शोभित साक्षात् भारतीय नारी और और वेश्याओं से भी गई बीती। वेश्याएँ भी भाई–बहन, माँ–बेटा, पिता–पुत्री संबंधों की पवित्रता मानती हैं, ये नहीं। इनके पास तो दर्शकों के संदेश आ रहे हैं। ये मेरा फोन नंबर है, मुझसे संबंध बनाइये। ऐसा मजा आपको किसी और से नहीं मिलेगा। नहीं, आपके वैवाहिक जीवन पर कोई दिक्कत नहीं आयेगी। मेरा रेट है...

दर्शकों की लार टपकाती विचित्र विद्रूप प्रतिक्रियाएँ जाने कहीं–कहीं के दर्शक। लगता सारे देश में यही सब चल रहा है। अंतिम परिणति शहर–शहर गाँव–गाँव, गली–गली, बलात्कार हत्या, लाशों के टुकड़े–टुकड़े...

तिरंगे की शान गई। भारत माँ की आन गई। देशप्रेम की भावना गई। आपसी सद्भावना गई। पूर्णाहुति में भी बहनों के मान वाली वह चिर उदात्त भावना भी गई। प्रेम–प्यार की वह कोमलकांत मर्मस्पर्शी अनुभूतियाँ, माँ की यह जीवनदायिनी निर्बाध बहती ममता, पिता का यह अभेद्य रक्षाकवच–सा

सतर्क वात्सल्य, देवी उपहार–सा भाई–बहन का वह पवित्रतम प्यार, मित्र–बंधुओं का वह स्नेहसिक्त आत्मीय व्यवहार–सब सेक्स के पैशाचिक दावानल में धू–धूकर जल उठे। चारों और धुआँ...धुआँ...धुआँ...। काला डरावना धुआँ....। सब स्वाहा।

नहीं, अभी भी कुछ बचा है।

बचे हैं ऐसे लोग, ऐसे परिवार, जिनमें घने धुएँ...धुंध के बावजूद रोशनी चमक रही है। जिस परिवार की बच्ची की मैंने हत्या की, उसकी माँ की चाकू से गोदकर घायल किया, यह भी तो ऐसा ही परिवार था। उसी ने तो मुझे ऐड़ी–चोटी लगाकर फाँसी के तख्ते पर पहुँचाया। मेरे अपने परिवार ने भी तो मेरा मुँह
नहीं देखा। ऐसे कितने ही परिवार अब सामने आ रहे हैं। उद्वेलित है, व्याकुल है। ऐसे परिवारों की शुचिता बनी रहनी चाहिये, क्योंकि परिवारों की शुचिता ही तो इस देश की जीवनी शक्ति है। इस देश की क्या, किसी भी देश की।

परिवारों की शुचिता बर्बाद करनेवाले ऐसे पोर्न वीडीओ के खिलाफ क्या कानून हैं?–मैंने अपने वकील से पूछा। उन्होंने बताया ऐसा कोई स्पष्ट कानून नहीं है। कानून नहीं है, तो क्या बनाया नहीं जा सकता। ये दिमाग की चूलें हिला देनेवाले धाकड़ बुद्धिजीवी क्या कर रहे हैं। ये लाखों की भीड़ को पल भर में मरने– मारने के लिए उत्तेजित करनेवाले नेता क्या कर रहे हैं। ये धर्म और
नैतिकता पर प्रवचन करनेवाले ज्ञानी महात्मा, ये बात–बात पर बवाल मचानेवाली पुरजोर महिला संगठन... ये धाकड़ वकीलों के संगठन, ये धुरंधर न्यायविद्...ये...ये....

और मेरी चेतना जैसे फन काढ़कर खड़ी हो गई। जब कानून कुछ नहीं कर सकता, कोई कुछ नहीं कर सकता, तो एक फाँसी की सजा पाया अपराधी कर सकता है। उसके लिए विधान है कि उसकी अंतिम इच्छा जरूर पूरी की जाती है। तब मुझ अपराधी की भी यही अंतिम इच्छा है कि हर घर, हर हाथ में बेरोक–टोक पहुँचनेवाले इन पोर्न वीडीओ को तत्काल बंद किया जाये। मैं फाँसी की सजा पाये उन सभी बलात्कारियों से भी अपील करूँगा, ''अगर वे मानते हैं कि इन पोर्न विडियो के कारण ही वे ऐसा दुष्कर्म कर बैठे, तो वे भी यही अंतिम इच्छा व्यक्त करें कि ये पोर्न विडियो फौरन बंद किये जायें। विडियो तो बंद हो ही, साथ ही ये गहन जाँच हो कि इन पोर्न वीडीओ के सारे पात्र, सारे दृश्य, संपन्न सुशिक्षित, संस्कारी भारतीय परिवारों के ही कैसे हैं। जरूर यह कोई राष्ट्रविरोधी षड़यंत्र है। इसके बाद तो किसी परमाणु बम की भी जरूरत नहीं। मगर परमाणु बम से भी ज्यादा विनाशकारी इस बम को हम अपराधी, जी हाँ, हम जघन्य अपराधी ही फ्यूज कर सकते हैं। कानून घृणित से घृणित अपराधी की अंतिम इच्छा जरूर पूरी करता है। हमलोगों की भी यह अंतिम इच्छा जरूर पूरी होगी। हाँ, फाँसी का फंदा गले में पड़ने पर 'जयहिंद' जरूर कहना। मेरे जैसे फाँसी की सजा पाये बलात्कारी पातकी, यह महान अवसर छोड़ो मत।

पत्रकार बंधुओ! मेरी आपलोगों से यही प्रार्थना है कि मेरी यह अपील फाँसी की सजा पाये उन सभी अभागे बलात्कारियों के पास जरूर पहुँचा दें, जो मानते हैं कि इन पोर्न वीडीओ के कारण ही उन्होंने यह दुष्कर्म किया। इतना तो आप करेंगे न!

तुम रूठा न करो

जीना मुश्किल हो जाता है.
मरना और कठिन हो जाता है
तुम जब रूठते हो तो दिल में
एक तूफान खड़ा हो जाता है
न हँसते बनता है, न रोते बनता है
न मन लगता है संसार के किसी काम में
कुछ भी अच्छा नहीं लगता है
कुछ अंदर मर सा जाता है
कोई अंदर डर से जाता है
एक तुम्हीं जीने के आधार सनम
तुम रूठा न करो, तुम बिन मन
शमशान हो जाया करता है
एक सजा लगती है जिंदगी
जिसकी करते हो बंदगी
वही हो जाये रूठकर खफा
फिर जीवन की पूजा सब टूटी लगती है
ये दिल तुम्हारा है. जान से तुम्हें प्यारा है.
जानता हूँ करते हो प्यार, फिर ये रूठना
जीना एक सजा के बाद दूसरी सजा लगता है
कह दिया करो बात, जो मन में होती है.
डांट दिया करो, लड़ लिया करो
मन में कुछ हो तो कहकर हल्का हो लिया करो
किन्तु ये तुम्हारा रूठना, जान निकाल देता है
सब सितम कर लिया करो
बस देखो,तुम रूठा न करो.

देवेंद्र कुमार मिश्रा
जबलपुर मध्य प्रदेश
7000693003

सब छलावा है

माया का फैलाया है
रिश्ते, नाते, प्यार, मोहब्बत
पैसों का खेल निराला है
अंदर से अंधेरा, बाहर सब
उजयाला है
दिखता कुछ और है
होता कुछ और है
अपनों पर अपनों का राग रंग का धावा है
सब जो दिख रहा, माया का छलावा है.
अच्छा है, नाता जोड़ प्रभु से
मोह के बंधन तोड़ संसार सागर से
यहां सब कुछ विशाल किन्तु खारा है
बहती नदिया बन जा, बहता चल
प्रभु के गीत ह्रदय में धारण करता चल
एक दिन सब खेल खत्म हो जाना है
नहीं चलना कोई बहाना है
यहां सब कुछ एक दिखावा है
भज नारायण, बाकी सब छलावा है.

गौरैया

आँगन थे तो आती थी गौरैया
दाना चुगकर मुस्कान बिखेरती थी गौरैया
अपनी नन्ही को साथ लाती
उसकी चौच में दाना दे, खाना सिखलाती गौरैया
अब न आँगन रहे न छत बचे
अब कहां से आये गोरैया
तपती धूप में, पानी की तलाश में
इधर उधर भटकती
भूख प्यास से आहत होती
आओ ग्रीष्म में मिट्टी के बर्तन में रखे पानी
डाले कुछ दाने
फ्लेट की बालकनी हो या कोई बगीचा
ताकि जीवन संरक्षण हो सके
और चहक्ति रहे प्यारी गोरैया.

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303